चित्रा मुद्गल

मेरी प्रिय कहानियाँ

लेखक की अपनी कहानियों में से उनकी पसंद की
चुनिंदा कहानियाँ - एक विस्तृत भूमिका सहित

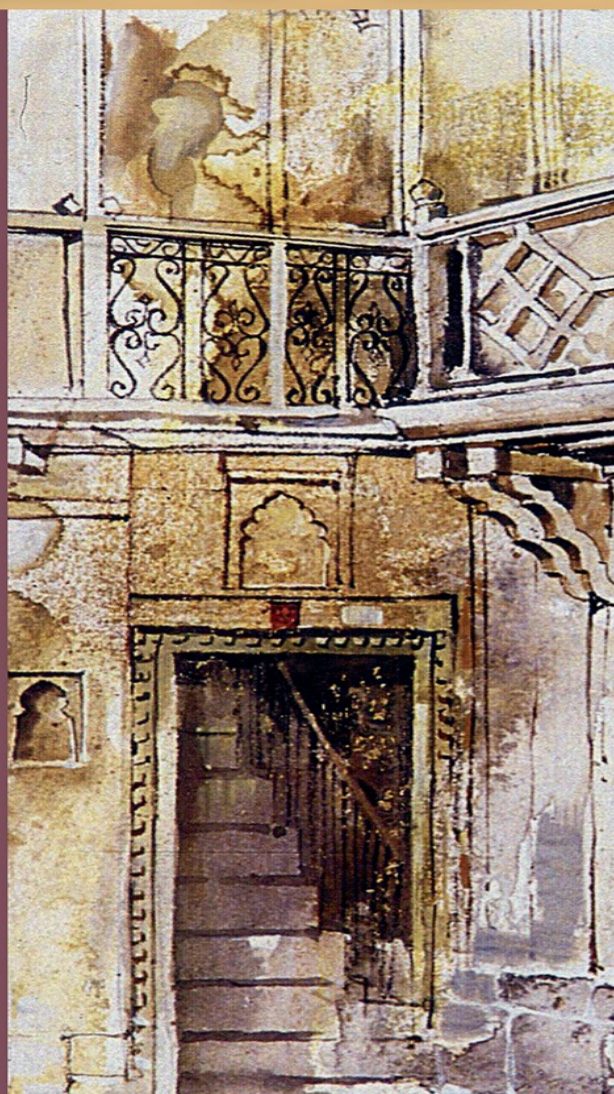

पाठक जानना चाहते हैं कि मनुष्यों के किस्से-कहानियाँ रचने-गढ़ने वाले मनुष्यों की जमात में मेरा आना कैसे सम्भव हुआ! आखिर यही रास्ता क्यों चुना मैंने, कि यही मेरा गन्तव्य है और इसी का अवगाहन मेरी सार्थकता है। कहानियाँ कहाँ से आती हैं मेरे पास! कहानियाँ स्वयं चलकर आती हैं या मुझे उनकी खोज में निकलना पड़ता है, आखेटक शिकारी की भांति? चलिए, इतना ही पर्याप्त होगा जिज्ञासुओं के लिए कि मैं यही भर बता दूँ कि आखिर ढेरों कहानियों में से मेरी प्रिय कहानियाँ कौन-कौन सी हैं। अन्यों की बनिस्बत वे कहानियाँ प्रिय हैं तो उनके प्रिय होने के कुछ विशेष कारण भी होंगे।

मेरी प्रिय कहानियाँ

चित्रा मुद्गल

राजपाल

ISBN: 978-93-5064-127-9
संस्करण: 2013
© चित्रा मुद्गल
MERI PRIYA KAHANIYAN (Stories)
by Chitra Mudgal

राजपाल एण्ड सन्ज़
1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट-दिल्ली-110006
फोनः 011-23869812, 23865483, फैक्सः 011-23867791
website: www.rajpalpublishing.com
e-mail: sales@rajpalpublishing.com

भूमिका

मनुष्य का जन्मदाता यदि मनुष्य ही है तो इस तथ्य से मुँह मोड़ना सम्भव नहीं है कि धरती के विस्मयकारी, जटिल भौगोलिक नक्शे पर, किस्से-कहानियों का जन्मदाता भी स्वयं मनुष्य ही है। किस्से-कहानियाँ, गीत-कविता मनुष्य के धरती पर जन्मने से पहले नहीं जन्मीं। यह भी उजला सच है कि कविता, कहानी को जन्म देने के लिए मर्द को न औरत की कोख का सहारा लेना पड़ा न औरत को मर्द की ज़रूरत महसूस हुई। उनकी चेतना ही कविता कहानी की कोख थी। संवेदना उसकी अभिव्यक्ति का आधार। माध्यम बने शब्द। कंठ से फूटे स्वरों को उसने वर्णमाला की सरगम में पिरोकर बोलियों को जन्म दिया। भाषा नब्ज़ बन गई और नब्ज़ में प्रवाहित धड़कनों का उतार-चढ़ाव जीवन की लय।

लय जब-जब अस्थिर और बेचैन हुई, मनुष्य के चेतन ने उसे स्वयं को टटोलने, खंगालने-पहचानने और आत्मद्वन्द्व करने के लिए बाध्य किया। चेतन ने ही उसे मनुष्य के द्वारा, मनुष्य के विरुद्ध रचे जाने वाले अमानवीय षड्यंत्रों के प्रति प्रतिरोधी स्वर बुलन्द करने का साहस पिरोया। कहानियों को जन्म देने वाला भी वही, कहानियाँ बुनने वाला भी वही। कहानियों का पाठक भी वही।

यह सिलसिला सदियों से अनवरत जारी है।

वर्तमान उससे अछूता नहीं। उसी के द्वारा निर्मित नए-नए संक्रमणों से जूझता और उसी के निदान के लिए चिन्तित। उसी वर्तमान का एक असन्तुष्ट हिस्सा मैं भी हूँ। लेखक असन्तुष्टों की जमात से बाहर किसी और का हिस्सा हो भी नहीं सकता।

यह कम दिलचस्प नहीं है कि औरों से निरन्तर सवाल करने वाला लेखक स्वयं सवालों से कम नहीं जूझता बल्कि, किए गए सवालों से जूझते हुए मंथन की रस्साकशी के उन उत्कट क्षणों में वह उस विद्यमान बोध से कभी अलग नहीं हो पाता कि शब्दों से उसका रिश्ता बना ही इसीलिए है कि वह उन सवालों को अनसुना कर सके जो उसके आत्म द्वारा आत्म से किए जाते रहते हैं और उनसे भी न कतराये जो स्वयं उसके सिरजे पात्रों द्वारा कथागति को अवरोधित कर अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को अंकुशित न होने देने के लिए, उसकी सृजनात्मक निरंकुशता के विरुद्ध लाम बन्द हो उससे सवालों पर उतर आते हैं। पात्रों से जिरह ज़रूरी है। लेखक जब पात्रों को अपनी कृति के रचाव में अपेक्षित स्पेस नहीं मुहैया करता तो रचना अपनी जनतांत्रिक प्रवृत्ति से विछिन्न हो, मात्रा लेखक का एकांगी बयान भर बन कर रह जाती है।

सोचती हूँ तो कुछ नुकीले प्रश्नों को अपनी ओर उन्मुख ठिठका हुआ पाती हूँ...

उनका आशय मुझ तक पहुँच रहा है। पाठक जानना चाहते हैं कि मनुष्यों के किस्से-कहानियाँ रचने-गढ़ने वाले मनुष्यों की जमात में मेरा आना कैसे सम्भव हुआ! आखिर यही रास्ता क्यों चुना मैंने, कि यही मेरा गन्तव्य है और इसी का अवगाहन मेरी सार्थकता है। कहानियाँ कहाँ से आती हैं मेरे पास! कहानियाँ स्वयं चलकर आती हैं या मुझे उनकी खोज में निकलना पड़ता है, आखेटक शिकारी की भांति? चलिए, इतना ही पर्याप्त होगा जिज्ञासुओं के लिए कि मैं यही भर बता दूँ कि आखिर ढेरों कहानियों में से मेरी प्रिय कहानियाँ कौन-कौन सी हैं। अन्यों की बनिस्बत वे कहानियाँ प्रिय हैं तो उनके प्रिय होने के कुछ विशेष कारण भी होंगे। कारण क्या हैं?

प्रश्नों के निर्मम आशय में समाहित नुकीली जिज्ञासाएं मुझे सहज नहीं रहने देतीं।

मुझे लगता है और लगातार लगता रहा है कि किस्से, कहानियाँ लिखने वालों की सुदीर्घ जमात में कोई रचनाकार शामिल हो कैसे उसका हिस्सा बन जाता है, यह लेखक बताना भी चाहे तो शायद पूरी तरह से वह उन कारणों को नहीं तलाश पाएगा जिनके चलते वह लिखने की ओर प्रवृत्त हुआ। ऐसा नहीं है कि इन जिज्ञासाओं से घिर या घेर लिए जाने पर मैंने संजीदगी से उनके जवाब खोजने की कोशिश नहीं की। उन मनोवैज्ञानिक दबावों की उकसाहट और उकसाहट से उपजे सुनिश्चय को मैंने शब्दबद्ध करने का प्रयास किया है, जिन्हें मैं कारण के रूप में रेखांकित कर सकती थी। लेकिन इस बात से भी कम विस्मित नहीं हूँ कि कुछ अरसे उपरांत मैंने उन कारणों से स्वयं को आंशिक रूप से सहमत पाया। लगा कि यह प्रश्न इतना आसान नहीं है जितना कि ऊपरी तौर पर वह ध्वनित होता है।

ज़मीन में गहरे धंसी बेतरतीब छितरीं सघन उन जड़ों सदृश। जिन्हें शायद स्वयं मालूम नहीं होता कि वह अपना आधार मज़बूत बनाने के निमित्त माटी की परतों के नीचे, जाने किस दिशा में कौन से अन्तरे कोने खोजबीन उसके उर से जा हिलगती है और अपने को विकसित करती रहती है। सतह से उसका अनुमान लगा पाना कठिन है।

सर्जक के लिए लिखना अपने भीतर अवस्थित मनुष्य को, मनुष्यत्व की कसौटी पर निरन्तर कसने की प्रक्रिया है। सर्जना की आनुभूतिक अविरलता सर्जक को उसके विकसित होते स्वरूप के साथ, उसके संवेद को अछोर विस्तार सौंपती है।

संवेद का यही विस्तार रचना की शैल्पिकता के मध्य उसके पायों के परिवेशगत दबावों और उसके आन्तरिक द्वन्द्वों की मनोवैज्ञानिक परिणितियों को, उसी की मानसिकता में पैठ सर्जक को अनुभूत करने की परम्परता और कायान्तरण की चमत्कारिकता से पूरता है। यहाँ यह भी कहना अतिशयोक्ति न होगी सर्जक का जाग्रत मनुष्यत्व इस कायान्तरण प्रक्रिया में पात्र को प्रवृत्त करता है कि वह अपने को किन्हीं भी परिस्थितियों में मनुष्यता की कसौटी पर कसने से न चूके। सही-गलत में अन्तर वह तभी कर पाएगा। शायद ही नहीं, मुझे विश्वास है। सर्जक का अभीष्ट भी यही होता है। अपने बौद्धिक कौशल से वह अपनी सर्जना के लक्ष्य तत्व को चाहे जिस रूप में व्याख्यायित करे।

इस सन्दर्भ में अपनी कहानियों में से मुझे वो कहानियाँ निश्चय ही अन्य कहानियों की तुलना में अधिक प्रिय और निकट महसूस होती हैं जो पात्रों को स्वयं अपने मानवीय विचलनों के प्रति सजग कराती हैं। उसकी जड़ चेतन को कुरेदती हैं।

जिनावर, सौदा, बाघ, ताशमहल आदि कहानियाँ इसी श्रेणी में आती हैं।

किशोर मानसिकता पर लिखना मेरी रचनाशीलता के लिए सतत् चुनौती की भांति रहा है। मेरा यह मानना है कि किसी भी विकासशील राष्ट्र की प्रगति का सही आन्तरिक मानचित्र यदि मापना हो तो वहाँ के समाज की किशोर होती पीढ़ी जो किसी भी देश के उज्ज्वल भविष्य की संवाहक हुआ करती है, के सपनों को तौलना-परखना होगा।

सभ्य और उन्नतशील समाज की ताल ठोंकने वाले देश के बचपन का आधे से ज़्यादा प्रतिशत यदि भूखा है, तो यह मान लेना अदूरदर्शिता न होगी कि उस संवेदनहीन विषम समाज की नींव में दीमक सुरंगें बिछा चुकी हैं और उस देश का किशोर होता बचपन अनिश्चित भविष्य के अँधेरे तले, विकल्पहीन आधी अधूरी सांसें भरने को अभिशप्त है। शोचनीय स्थिति है कि गुमराह होती किशोर पीढ़ी के इस प्रतिशत के प्रति न तो हमारी राजनीति कोई दायित्वपूर्ण पहलकदमी करती दृष्टिगत हो रही है न जनमानस उसे किसी प्रकार की भावनात्मक सुरक्षा देने के लिए आगे बढ़ उन्हें अपनाने को राज़ी है। गुमराह किशोर उन्हें अपनी चमक-दमक भरी आडम्बरीय जीवन शैली के सीने पर बदनुमा दाग महसूस होते हैं...

'त्रिशंकु', 'मामला आगे बढ़ेगा अभी' और 'बेईमान' कहानियाँ, समाज के हाशिए पर फिंके, भावनात्मक असुरक्षा और अभावों में जी रहे उन्हीं किशोरों के मनोविज्ञान को रूपायित करती कहानियाँ हैं। नहीं मालूम कि मैं उन किशोर नायकों के गीले मर्म को कहाँ तक छू और सहला पाई हूँ। मगर जब ये कहानियाँ 'रविवार', 'सारिका' और 'वर्तमान साहित्य' के अंकों में प्रकाशित हुईं तो पाठकों में उमड़ी व्यापक प्रतिक्रिया ने मन को गहरे आश्वस्त किया। कुछेक पाठकों का कहना था—किशोर जीवन के इतने गहरे संस्पर्श हिन्दी कहानी में अन्यत्र अनुपलब्ध हैं...

अनेकों बार निश्चय कर चुकी हूँ कि किशोर जीवन की विडम्बनात्मक यंत्रणाओं पर एक बड़ा मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखूँगी। लेकिन अब तक योजना की रूपरेखा कागज़ों पर उतरने से वंचित है। इधर मेरे उपन्यास के कई मासूम किशोर नायक डॉक्टर, इंजीनियर बनने की इच्छा रखते हुए तस्करों की दुनिया के खलनायक बन गए...

जब कभी किसी से भूले-भटके कहीं मिलना होता तो पाँवों को हाथ लगाते हुए वे कहने से नहीं चूकते, 'ताई, तुमने भी हिम्मत नहीं की न!'...

क्रम

[त्रिशंकु]

[ताशमहल]

[सौदा]

[जिनावर]

[आँगन की चिड़िया]

[बाघ]

[मामला आगे बढ़ेगा अभी]

[बेईमान]

[जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं]

त्रिशंकु

स्कूल से छूटा, तब माँ की हिदायत बराबर याद थी, 'सिद्दा घर कू आना बंडू। दोन वाजता मेरे कू पंजाबन सेठानी के साथ मारकेट खरीदी को जाना हय...' पर गली के मोड़ में घुसते ही छोकरों को 'हूऽ तूऽऽ तूऽऽऽ' खेलते पा कबड्डी में शामिल होने का लोभ संवरण नहीं कर पाया।

बस्ता और कमीज़ एक किनारे फेंक, अपनी झूल आई निकर को तोंदी पर खींचकर वह चीते की-सी फुरती ओढ़ 'तूऽऽ तूऽऽऽ' करता हुआ पारी खेल रहे मोहल्ले के गोल में शामिल हो गया। और लम्बी दम साधकर उसने पैंतरे बदल-बदलकर तीन को तो पहले ही झपाटे में मैदान से बाहर कर दिया। दूसरी पारी में दो मुस्तैद छोकरों ने उसकी मामूली-सी असावधानी के चलते उसे कुत्तों की तरह घेरकर धर दबोचा।

अचानक हुए हमले से वह सँभल नहीं पाया। मुँह के बल गिरा तो लम्बी दम साधने के बावजूद सीधा खड़ा नहीं हो पाया। छोकरों ने पकड़कर उठाया तो छिली ठुड्डी की जलन भूलकर वह पाठशाला की खाकी वरदी की इकलौती निकर के फट जाने से घबरा गया। आँखों के सामने माँ का रौद्र रूप साकार हो उठा।

घर कैसे जाएगा इस हालत में? अचानक उसे याद हो आया, सुबह पाठशाला के लिए घर से निकलते समय माँ ने उसे बार-बार चेतावनी दी थी कि शाला छूटते ही वह सीधा घर आए, मोहल्ले के लोफरों के साथ आवारागर्दी करने न बैठ जाए। उसके लच्छनों से परिचित जो है। जानती है कि शाला नियमित डेढ़ बजे छूटती है और वह दो-ढाई बजे से पहले कभी घर नहीं लौटता। इसलिए जब कभी उसे किसी काम से बाहर जाना होता है वह उसे 'सिद्दा' घर आने की चेतावनी देती। चेतावनी वह हरगिज़ न भूलता।

घर खाली न छोड़ने के पीछे कुछ ठोस कारण थे। माँ को सदैव अन्देशा बना रहता कि कहीं उसका बाप घर अकेला पाकर गृहस्थी के बरतन-भाँडे न उठाकर ले जाए। कितने हण्डे-बटुवे उसने बेच खाए। माँ के लड़ने पर उन्हें चराने की कोशिश करने लगता कि किसी अड़ोसी-पड़ोसी ने मौका ताड़कर हाथ सफाई दिखा दी होगी, वह तो कुण्डी लगाकर फकत संडास तक गया था।

उसकी राह देखती माँ पंजाबन सेठानी के संग अगर नहीं गई होगी तो घर पर तोप-सी

भरी बैठी होगी। खैर नहीं उसकी, हाथ-पाँव साबुत बच रहे तो समझो गनीमत! तिस पर फटी निकर! आग में तूप (घी)। माँ के प्रकोप से बचने की कोई तरकीब? तरकीब है। देर में देर! कुछ देर कहीं और सुस्ता ले। घर में हुई तब भी घण्टे-आध घण्टे में साँझ की भाँडी करने निकल लेगी। लौटेगी तो ठीक दीया-बाती के समय। तब तक जूठे बरतनों के साथ मगज की तेज़ी भी मँज-पुछ गई होगी। पटाने की खातिर वह झोंपड़ी का झाड़ू-पोंछा कर लेगा। साफ-सुथरा घर माँ की कमज़ोरी है। देखते ही खिल जाएगी।

लेकिन तरकीब उसे विशेष अभय नहीं दे पाई। दोनों ही बातें सम्भव थीं। कुछ देर बाद माँ का क्रोध शान्त हो जाए या फिर दुगुने-तिगुने वेग से नथुने फड़काता उसे ताव खाता मिले। ऐसे में उनका सामना करना ही उचित! देह पर कमीज़ चढ़ाकर वह खोपड़ी से बस्ता लटकाए घर की ओर बढ़ दिया।

माँ नहीं गई थी।

जैसे ही वह घर में दाखिल हुआ, प्रतीक्षा में उबली बैठी माँ तमतमाई हुई-सी उस पर झपटी "हलकट, मेलया, कुत्तरा, हरामखोर...बोला न तेरे कू सुबू? विसरलास (भूल गया)? पन कईसा...कईसा तेरे को याद नईं हुआ कि मेरे को सेठानी के साथ खरीदी को जाना है... चढ़ी तेरे को चरबी? अब्भी, सेठानी का बूमा-बूम कौन सुनेगा! तू?"

फर्श पर छटपटाता हुआ वह 'हाय-हाय' करता, हाथ-पैरों से तीखे प्रहारों को झेलता माफी माँगने लगा। मगर माँ पर न उसके माफी माँगने का कोई असर हुआ, न विश्वास दिलाने का कि अब की वह उसे छोड़ दे, आइन्दा उससे ऐसी लापरवाही हरगिज़ नहीं होगी। उलटा माँ के क्रोध ने तपे तेल-पुते तवे पर अचानक पड़ी पानी के छींटे-सी लपट धर ली। मारते-मारते जब वह स्वयं निढाल हो उठी, तब कहीं जाकर उसके हाथ-पाँव रुके।

"वो हरामखोर आए, तो चौक्कस रैना...किसी वस्तु को हाथ-बीथ नईं लगाने को देना। जाती मैं। आइकलास (सुना)?" माँ गुर्राती-सी दरवाज़ा भड़ाक से भेड़कर खोली से बाहर हो गई।

'वो हरामखोर...?' यानी उसका बाप...

पंड्या गली में घोंडू के दारू के अड्डे पर वह तब तक बैठा घड़ियाल-सा नौसादार की पीता रहता जब तक टुन्न होकर अपनी गली में अगल-बगल की दो-चार झोंपड़ियों के दरवाज़े अपनी खोली के भ्रम में न खटखटा लेता। फैक्टरी से छूटकर बाप सीधा कभी घर न आता, चाहे उसके काम की पहली पाली हो या दूसरी। अक्सर माँ जान ही नहीं पाती कि बाप कौन-सी पाली कर रहा है। समय-असमय आने पर जब कभी वह सशंकित होकर बाप को टोकती तो उलटा बाप उसी पर चढ़ बैठता कि वह 'ओवरटैम' करता है, फिर टैम से कैसे घर पहुँचे?

इतना वह भी समझने लगा था कि जो कामगार 'ओवरटैम' करता है उसे पगार के अलावा अतिरिक्त आमदनी होती है। फिर तो माँ को बाप की ऊपरी कमाई से खुशी होनी चाहिए थी; पर समझ में न आता कि 'ओवरटैम' की बात सुनकर माँ क्यों असहज हो उठती

है! उन दोनों की झाँय-झाँय में कुछ गोलमाल लगता है। दिमाग पर बहुत ज़ोर डालता पर हाथ कुछ न लगता! किशोर बुद्धि चकरा जाती।

छोटी बहन कमला जब घर पर ही रह रही थी, अक्सर आधी रात में उसकी और कमला की नींद माँ की हृदयविदारक चीखों और धमाधम कुटती देह की दहलाती कराहों से उचट जाती। आतंक से सहमे अपनी दरी पर पड़े हुए, घुमड़ती छाती में फूटने को व्याकुल हिचकियों को होठों में भींच, विवश, दोनों मोम-से टपकते रहते! कुछ देर बाद वह पाता कि बेसुध-सी होती कमला उसकी पीठ से दुबकी, उसकी थर्राती रीढ़ में अपना चेहरा गड़ा लेती। पल-पल किसी अनहोनी की दहशत नुचे लहूलुहान पंखों-सी उन पर टूटने लगती। वह सोचना शुरू कर देता। बिना स्वयं से सवाल किए कि यह उम्र उसकी सोचने की नहीं है।

क्षुब्ध माँ जब भी उसे कूटती, अपनी चोटों से न वह उस कदर आतंकित होता, न आहत, न अवमानित! उलटा जल्लादी बाप के प्रति उसके हृदय में प्रतिहिंसित आक्रोश सिर उठाने लगता। यहाँ तक कि वह रात से खौफ खाने लगा। रात से शायद माँ भी खौफ खाती। शायद इसीलिए वह उन्हें जल्दी खिला-पिलाकर सुला देती कि उनकी चैन की रात तभी तक है जब तक घर की कुण्डी नहीं खड़कती। कुण्डी खड़कने से उसकी नींद नहीं उचटती; नींद उचटती माँ की कलपती चीखों से! इधर कुछ दिनों से उसमें परिवर्तन आया है। माँ की भाँति उसकी भी नींद कच्ची हो गई है। कुण्डी के खड़कते ही आँखें 'झप्प' से खुलकर किवाड़ों की ओर घूम जातीं। मगर वह खुली आँखों को किसी तेज़ाबी आँधी के भय से आशंकित हो करवट-भर भींच लेता, और साँस साधे चिर-परिचित अगले दृश्य की प्रतीक्षा करने लगता।

उस रात बाप की दरिन्दगी की पराकाष्ठा ही हो गई। आवेश में काँपते हुए बाप ने मोरी की दीवार से टिका कपड़ा कूटनेवाला धोक्का उठा लिया और उसे पूरी ताकत से माँ के माथे पर दे मारा। माँ का माथा फट गया। उसका खून से तर चेहरा और मूर्च्छा से मुँदती आँखें देख भय से काँपती कमला ने बाप की टाँगें जकड़ लीं और दोबारा माँ पर हाथ न उठाने की चिरौरी करने लगी। किन्तु पगलाए साँड़-से उन्मादी बाप ने उसे टाँग से एक ओर उछाल दिया और औंधी अचेत माँ की कमर पर एक लात हुमककर खोली से उड़न-छू हो गया। तब तक आस-पास के लोग जाग चुके थे। भागते बाप को उन्होंने धर पकड़ने की कोशिश भी की, पर जाने कहाँ की ताकत उसमें आ समाई थी कि वह छह-सात लोगों के सँभाले न सँभला। छटपटाकर जो छूट भागा तो अब तक लौटकर शक्ल नहीं दिखाई उसने। माँ के माथे पर सात टाँके लगे थे।

आठ साल की कमला को बाप द्वारा टाँग से उछालकर फेंकना, माँ को जवान छोकरी पर हाथ उठाना लगा और यह भी लगा कि अगर उसका दुस्साहस इस सीमा तक बढ़ गया है तो क्या भरोसा, किसी रोज़ निर्दयी माँ के हिमायती बच्चों का गला ही घोंट दे! द्वन्द्व में फँसी माँ इससे-उससे सलाह करती अन्त में इसी नतीजे पर पहुँची कि कमला को अब वह घर में नहीं रखेगी। इसी दुश्चिन्ता में उसने 'आशियाना' बिल्डिंगवाली जोशी बाई का पुराना प्रस्ताव मान लिया कि कमला जोशी बाई के पास रहेगी तो चिड़िया की-सी जान छोकरी इस नरक-कुण्ड से दूर और सुरक्षित रहेगी।

जोशी बाई काफी दिनों से माँ के पीछे पड़ी हुई थीं कि वह कमला को टहल के लिए उनके घर रख दे। भाँडी-कटका के लिए उनके पास अलग से बाई है। उसे फकत ऊपर का काम करना होगा, मसलन, मिंकू का खयाल रखना, उसे प्रैम में नीचे घुमाना-फिराना। साग-सब्ज़ी कटवा लेना। मेहमानों को पानी आदि पूछ लेना। ज़रूरत की छोटी-मोटी चीज़ें दौड़कर ला देना।

सुबह ग्यारह से लेकर शाम साढ़े चार बजे तक जोशी बाई की पाठशाला होती है। घर लौटते वह खूब थक जाती हैं। कमला से उन्हें बड़ी मदद हो जाएगी। खाना, कपड़ा, साबुन, तेल सब उनका। ऊपर से महीने के तीस रुपये नकद। ज़्यादा पगार भी वे दे सकती हैं, लेकिन तब जब कमला ढंग से काम-धाम सीख जाएगी और ज़िम्मेदारी स्वयं उठाने लायक हो जाएगी। अभी तो वह बच्ची है। उलटा, उन्हें ही लगातार उसके साथ लगकर उसे सब सिखाना-समझाना होगा। रखेंगी वह उसे अपनी बेटी की तरह। कोई भेदभाव नहीं। जोशी बाई ने यह भी विश्वास दिलाया कि समय निकालकर वह उसे कुछ पढ़ा-लिखा दिया करेंगी और कोशिश करेंगी कि उसे रातवाली किसी पाठशाला में दाखिल करा दें। "मेरे लिए यह मुश्किल थोड़े ही है...झोपड़पट्टी के दूषित वातावरण में रहकर तो लड़की सलीकेदार होने से रही।"

जोशी बाई के इन तर्कों से माँ के उलझे, हताश मन में उत्साह का बीज अँकुआ आया था।

कमला को अपने संग 'आशियाना' बिल्डिंग में ले जाने से पहले जोशी बाई उसके लिए दो नई फ्रॉकें सिलवा लाईं। उन्हीं में से एक पहनाकर उसे अपने साथ ले गईं। उसने सुना, जाते-जाते वे माँ को चेतावनी भी दे गईं कि पैसों की खातिर घड़ी-घड़ी दरवाज़ा पकड़कर मत खड़ी होना। बीस वह उसके हाथ में देंगी। दस वह कमला के नाम पोस्ट ऑफिस में खाता खुलवाकर, उसके खाते में डलवा दिया करेंगी, जो उसके और कमला के दोनों के हक में उचित है। किन्तु माँ इसके लिए राज़ी नहीं हुई। कड़की का रोना रोकर उसने उनसे आग्रह किया कि फिलहाल कमला की पूरी पगार वह उसके हाथ में ही दें।

साफ-सुथरे कपड़े पहने जोशी बाई के साथ जाती हुई कमला अचानक उसे अजनबी-सी हो उठी लगी, ठीक बिल्डिंग में रहनेवालों की तरह सुन्दर और अजनबी!

कमला की अनुपस्थिति उसे बहुत खली और अब तक खलती है। कमला होती तो हमेशा की तरह आज भी उसे पहले डपटती। बड़ी-बूढ़ी की तरह समझाती-मनाती, "काय को तू माँ की बात नईं सुनता, बंडू? गली के छोकरे पक्के मवाली, उनको घर से मतलब नईं, पन तू क्यों उनका चक्कर में पड़ता? मार खाने की आदत पड़ गई तेरे को, चल उठ...धो मूँ-हाथ। खाना निकालती मैं तेरे वास्ते।"

दुखते हाथ-पैरों को सिकोड़ता-फैलाता, माँ के ऊपर कुढ़ता वह उठ खड़ा हुआ। भूख से अँतड़ियाँ कल्ला रही थीं। पतीले का ढक्कन खोलकर भीतर झाँका। माँ ने खिचड़ी बनाई थी। खिचड़ी में करछुल नहीं लगी। इसका मतलब है, माँ भूखी ही चली गई। मन खिन्न हो

आया। सचमुच वह माँ को बहुत तंग करता है। दिन-दिन-भर माँ घरों में खटती है। किसके लिए? उसने मन-ही-मन निश्चय किया, आइन्दा वह माँ को परेशान नहीं करेगा। पाठशाला से सीधा घर आएगा। घर के काम में उसका हाथ बँटाएगा। पढ़ाई में मेहनत करेगा।

और सचमुच अगले ही रोज़ से वह अपने निश्चय के मुताबिक पढ़ाई में मन लगाने लगा। माँ उसे पुस्तकें खोले बैठे देखती तो प्रसन्न हो उठती। सब ठीक-ठाक चलने लगा।

एक दोपहर वह खाना खाकर अपनी थाली उठा ही रहा था कि खोली का दरवाज़ा अचानक भड़भड़ाया। भड़भड़ाहट की ताल ने क्षण-भर को उसकी देह से खून निचोड़ लिया। उसने भीतर से चढ़ी कमज़ोर किवाड़ों की कुण्डी को अविश्वास से देखा। समझ नहीं पाया कि क्या करे। तभी किवाड़ दोबारा भड़भड़ाए। अब की बार भड़भड़ाहट में बेसब्री थी। तुरन्त न खुलने पर तोड़ देने की उद्दण्ड बेसब्री! घर पर माँ का न होना खला। उठकर घबराए हुए मन से जूठी थाली उसने मोरी में खिसकाई और कमीज़ की नाखूनी से हाथ पोंछता कुण्डी खोलने लपका। किवाड़ खोलते ही नशे में धुत्त यमदूत-से बाप को खोली में दाखिल होते...नहीं, देसी का भभका छोड़ते हुए लगभग अपने ऊपर गिरते पाया। उसे सीधा करते हुए वह सहम उठा। बाप की अनुपस्थिति में बड़ी शान्ति थी। जब भी उसके बारे में सोचता, यही लगता कि अच्छा हो, बाप फिर कभी घर न लौटे। मगर उसके सोचने से क्या होता है? बाप साक्षात् मुसीबत बना उसके सामने मौजूद था।

खड़े न रह पाने की स्थिति में वह डगमगाता, धम्म-से लोहेवाले पलंग पर ढहकर पसर गया! वैसे माँ के लौटने का समय हो रहा था। किसी भी क्षण वह घर लौट सकती है। घर पर माँ का होना बहुत ज़रूरी लग रहा था। बाप की मौजूदगी सँभालना उसके वश की नहीं। दूसरी ओर, आशंका से मन डर भी रहा था कि कहीं उन दोनों का आमना-सामना किसी जंग को आमन्त्रण न दे बैठे!

अचानक भिड़े किवाड़ों पर लौटी माँ की चिर-परिचित हलकी थाप ने उसे जैसे मगरमच्छ के मुँह से छीन लिया। किवाड़ों पर कुण्डी नहीं चढ़ी थी। पर माँ को इसकी जानकारी नहीं थी। वह लादी से उछली गेंद की भाँति उछलकर किवाड़ों के पास पहुँचा और माँ के भीतर पाँव देने से पहले उसने लोहे के पलंग पर पसरे बाप की प्रतिक्रिया माँ के चेहरे पर पढ़नी चाही। किन्तु माँ का चेहरा उसे अनलिखी तख्ती-सा सपाट, शून्य लगा।

बाप मुँह पर भिनकती मक्खियों से तनिक परेशान हुआ। सिर झटकते हुए नशे में बड़बड़ाया, "कमली...पानी दे तो..."

अनिच्छा से हण्डे से गिलास-भर पानी लेकर वह बाप के निकट पहुँचा, "पानी...।"

बाप ने उसकी आवाज़ पर लाल आँखें खोलकर उसे गौर से देखा, "कमली किदर हैय?"

"जोशी बाई के घर काम पर रख दिया।" उसकी बजाय माँ ने गुर्राकर जवाब दिया।

"कितने देगी?" बाप एकदम चैतन्य हो उठा।

"खाना-कपड़ा, ऊपर से तीस।"

“वो अँधेरीवाली मंगलोरियन बाई उसको माँगती होती...खाना-कपड़ा, ऊपर से साठ रुपया पगार, तभी न क्यों पाड़ा?”

“पहले उससे नौकरी नईं करानी होती, तू औकात में रेता तो कभी नईं... उप्पर उस घर में मैं अपना छोकरी काम करने को भेजती? उसका मरद समन्दर (स्मगलिंग) का धन्धा करता...अक्खा दिन उदर दारू चलती। मालूम नईं कइसा-कइसा लोग आते उसके घर कू? भरोसेवाली होती क्या वो?”

“ये तेरी भड़वी मास्टरनी भरोसेवाली है क्या?” पलंग से उठते हुए बाप गुस्से से दहाड़ा।

“जबान सँभाल, हाँ।” प्रत्युत्तर में क्षुब्ध माँ को जैसे चिनगारी लग गई, “पोरगी की (बेटी) फिकिर नईं, पगार की बोत फिकिर हय तेरे को? हाँ! अपना कमाई में दारू के वास्ते नईं पुरता! बोल तो खटिया डलवा दूँ तेरे वास्ते...फिर खा पोरगी की कमाई।”

“साआली राँड़, तू मेरे को गाली देती, भँड़ुवी! अबी ठिकाने करता तेरे को...” बाप ताव खा झपट पड़ा माँ पर।

माँ की ज़बान नहीं रुकी। वह गले तक अघा आई सारी तिलमिलाहट और भँड़ास जैसे एकबारगी खाली कर देना चाहती थी।

वह आशंकित हो काँप उठा। क्या हो रहा माँ को? बाप का स्वभाव जानती नहीं? चुप्पी मार लेती तो क्या था...उसे लगा, वह कमला के पास भाग जाए अभी, इसी क्षण। अच्छा ही हुआ जो जोशी बाई कमला को ले गईं। उसे भी माँ किसी के घर काम के लिए क्यों नहीं रख देती?

बाप की धौंस से बेअसर माँ अब भी चुप नहीं हो रही, “भड़ुवा...एक पैसा नईं देता...मैं खून पिला-पिला के बच्चे पालती और तू हरामखोर वो राँड़ के साथ मस्ती मारता...साआला, हाथ लगा के देख अभी मेरे को? देख?”

‘राँड़ के साथ?’ माँ क्या बोल रही है! उसके माथे से जैसे अचानक गरम सलाख छू गई। तभी नज़र बाप की ओर उठी। तमतमाया बाप बरतनों में से लपककर लोटा उठाता हुआ दिखा। लोटा छीनने के लिए वह उसकी ओर झपटे, तब तक तो माँ के सिर से खून का फव्वारा फूट पड़ा। माँ ‘देवाऽऽ’ कहकर ईश्वर को गुहारती फर्श पर ढेर हो गई और तट पर पड़ी मछली-सी तड़फड़ाने लगी।

माँ के माथे पर टाँके लगे अभी ढाई-तीन महीने नहीं गुज़रे थे कि जल्लाद बाप ने फिर उसका सिर फोड़ दिया।

उसका सिर घूमने लगा। बजाय माँ को सँभालने के वह विवश-अवश घुटनों में मुँह गड़ा, साँसें खींचता फफक पड़ा। उसके घर में तेज़ धारवाला रामपुरी चाकू क्यों नहीं? होता तो आज वह सीधा बाप की छाती में भोंक देता। एक बार, दो बार, तीन बार...‘खच’...‘खच’! ऐसे जानवर को ज़िन्दा छोड़ना खतरनाक है। छोड़ दिया तो वह कभी भी, किसी रोज़ पलटकर माँ की जान ले लेगा। माँ को मारकर उसकी...उसके बाद कमला

की...कमला शायद उसके हाथ न लगे।

माँ का आर्तनाद सुनकर पड़ोसन लक्ष्मी अम्मा और सामनेवाले हसन काका घुस आए खोली में। बाप हमेशा की तरह मुँह छिपा, तीर-सा निकलकर भाग खड़ा हुआ।

हसन काका ने छटपटाती माँ को ही डाँटा, "बंडू की माँ, क्यों इस बदज़ात के मुँह लगती है? जानती नहीं! कमबख्त का मुँह नहीं, हाथ चलता है, हाथ..."

लक्ष्मी अम्मा लपककर अपनी खोली से हल्दी-चूना गरम कर लाई और घाव के आस-पास के बाल कतरकर घाव पर लेप लगाने लगी। पट्टी बाँधने के लिए लक्ष्मी अम्मा ने उससे पुराना कपड़ा माँगा। वह कमला की पुरानी छोड़ी हुई फ्रॉक उठा लाया। हड़बड़ाहट में उसे कोई अन्य कपड़ा सूझा ही नहीं कि जिससे माँ के फटे सिर पर पट्टी बाँधी जा सके। वैसे भी कमला की यह फ्रॉक अब उसके किस काम की? जब से जोशी बाई के घर गई है, खोली के बीचोंबीच बँधे तार पर कपड़ों के ढेर में फ्रॉक ज्यों-की-त्यों टँगी हुई है।

"अइयो, बंडू! सुन..." लक्ष्मी अम्मा ने घाव पर पट्टी बाँधकर टेंट से एक अठन्नी निकालकर उसकी ओर बढ़ा दी, "फटाफट दौड़ के एक सेरीडून (सेरीडॉन) तो ले के आ...वो नुक्कड़वाली पान की दुकान पर मिलेगी। सेरीडून नईं होना तो पिच्छू एनासिन का गोली ला। मैं तब्बी तलक माँ के लिए हल्दी डाल के चाय बनाती हो, बोत बच गई रे माँ... बोलेंगे तो वो टाँके का जागा पे नईं लगा, नईं तो जान जाती...जा, तू जल्दी जा..."

वह आज्ञाकारी बालक की भाँति खोली के बाहर हो गया। पर मन में माँ की चोट की पीड़ा से ज़्यादा माँ के कहे वाक्य कोंचते, मँडराने लगे 'राँड़ के साथ मस्ती...' कहने का क्या तात्पर्य था माँ का? विचित्र लगा माँ का ताना। उससे भी अधिक विचित्र लगा, माँ का आज का व्यवहार! दूसरे दिनों की अपेक्षा इस बार बाप अपनी इच्छा के विरुद्ध कमला को जोशी बाई के यहाँ रखने से भड़का अवश्य, लेकिन उसके क्रोध को लगातार फूँक दी माँ ने। बाप से हमेशा डरनेवाली और उसके डर से मुँहज़ोरी करने से मुँह चुरानेवाली माँ का यह रूप निराला लगा! कहीं गड़बड़ ज़रूर है। बाप इधर रहता नहीं तो आखिर भागकर जाता किधर है? एकाध रोज़ की बात हो तो वह सोच भी ले कि हो सकता है, बाप पी-पा दारू के अड्डे पर ही पड़ा रहता हो या किसी दोस्त के घर! महीनों कोई कैसे रख सकता है पियक्कड़ बाप को अपने पास?

पान की दुकान पर पहुँचकर उसने राहत की साँस ली। जैसे माँ के लिए संजीवनी बूटी पा लेने का आश्वासन पा लिया हो उसने...माँ से पूछे वो राँड़ के बारे में?

सुबह वह बड़ी मुश्किल से जागता। आवाजें-पर-आवाजें लगाती माँ धमकाती रहती। अन्त में खीझकर हाथ पकड़ दरी पर उठाकर बैठा देती, 'शाले को नईं जाने, बंडू?' पर, पर आज माँ की पहली ही पुकार पर चौकन्ना हो उठ बैठा।

"तू ठीक न?"

"ठीक मैं..." माँ ने उसे चिन्तित न होने के लिए आश्वस्त किया। बोली, "जा, भइया जी की दुकान से पावली (चवन्नी) का दूध ले आ, चाय के वास्ते।"

वह बिना हील-हुज्जत किए गिलास और पावली लेकर झोपड़े से बाहर निकल आया। गली में अभी सुबह नहीं हुई थी। माँ ने कुछ जल्दी ही उठा दिया उसे। हो सकता है, वह दर्द के मारे सोई ही न हो रात-भर! झूठ-मूठ उसे बहलाने के लिए कह दिया कि मैं ठीक हूँ।

अगल-बगल की सारी दुकानों के शटर गिरे हुए थे। खाली भइया जी की दुकान खुली थी। दूध से भरा कड़ाह अधसुलगी बड़ी सिगड़ी की बगल में ही धरा हुआ था। करीब पहुँचा तो कोयले सुलगाने के उद्देश्य से उड़ेले गए मिट्टी के तेल का भभका लपटों के बावजूद नथूनों में दमघोंट बदबू भर गया। जी मितला उठा। उसे देख भइया जी ऐंठी हुई मूँछों से कटाक्ष करते हुए मुस्कराए, "तू कैसे आ गया रे, बंडू!...कहीं बाप ने कुटम्मस तो नहीं कर दी महतारी (माँ) की?"

वह भइयाजी के कटाक्ष से कटकर रह गया। झूठ बोला, "ताप आ गया माँ को।"

"ताप?" भइया जी 'हो-हो' करते हुए हँसे।

उसने लपककर उनके हाथ से दूध का गिलास ले लिया और तेज़ी से दुकान के बरामदे की सीढ़ियाँ उतरने लगा।

क्षोभ से मुँह कड़ुवा आया। उसके घर के तमाशे किसी से छिपे नहीं! घोर अपमानजनक स्थिति है। महसूस हुआ, जैसे सुबह-सुबह भइया जी ने उसके किशोर गालों पर 'प्रश्न' नहीं, तमाचे जड़ दिए। उपहास उड़ाते तमाचे! उसने सुना, वे अपने नौकरों को सुनाकर बोले, "अक्खा झोपड़पट्टी का ऐसन हाल बा...जोरू चार घरि चौका-बासन करति हय और इनके मरदुआ घाटी साले...दारू पी-पा के मेहरारू के हाड़-गोड़ तोरत हैं, राम-राम, कैसी जबराई!" उसका वश चलता तो वह हाथ में पकड़े दूध के गिलास को गोटी (कंचे) के अचूक निशाने-सा साधकर भइयाजी पर फेंक मारता। उनकी चटचटाती सहानुभूति की उसको और उसकी माँ को कतई ज़रूरत नहीं। बापू उसका नकारा, बेईमान, दारुड़िया, जल्लाद सही, पर वह अपनी माँ को घर-घर भाँडी नहीं धोने देगा।

"मैं पढ़ाई छोड़ देगा" उसके भीतर के किशोर बंडू ने अचानक परिस्थितियों से लड़ने का फैसला किया।

पढ़कर करेगा भी क्या? जब तक पढ़-लिखकर हवलदार के माफिंक कमाने-धमाने के काबिल बनेगा, चौबीसों घण्टे मेहनत करती, बूँद-बूँद निचुड़ती माँ ज़िन्दा बचेगी? पीली, कमज़ोर, चलती है तो मन डरता है कि अगले ही डग ठोकर खाकर ढेर न हो जाए। वह माँ को ज़िन्दा रखेगा। कमाएगा; कमाएगा तो आराम करने के लिए माँ को घर बैठा देगा। पैसा जोड़कर कहीं अलग खोली ले लेगा, जहाँ दुष्ट बाप की परछाईं भी न पहुँच सके। माँ काम पर से लौटती है तो कटे वृक्ष-सी लोहेवाले पलंग पर ढेर हो जाती है। कुछ रौनक चेहरे पर आई है, जब से कमला की पगार हाथ में आने लगी है। वह भी कुछ करने लगेगा तो उनके चेहरे की गुम रौनक पूरी लौट आएगी।

सवाल उठता है—माँ सुख-चैन के दिन देख सकेगी? कैसे? वह करेगा क्या? क्यों... कोई छोटा-मोटा धन्धा। रफीक करता है न! उसके जैसा ही कोई काम! दोस्तों के बीच

रफीक का धाँसू रौब है। दोस्तों को बीड़ी भी वही पिलाता है अपनी कमाई से। कभी-कभी तो निःसंकोच पूरा बण्डल थमा देता उन्हें।

उससे मिलेगा फौरन...नक्कीच!

दरवाज़े पर पहुँचा ही था कि लक्ष्मी अम्मा ने पुकारा अपने ओटले (बरामदे) से, "माँ को कइसा है, बंडू...उठने को सकी?"

"नईं, अम्मा।" उसने उदास होकर जवाब दिया।

"मार जास्ती लगी, बेटा! हल्दी-चूना से घाव नईं पुरेगा। डाकदर के पास ले जाके सूई देना माँ को। और सुन, दो-तीन दिन घर में बैठने कू बोल उसको।"

"मेरा किदर सुनेगी, अम्मा!" उसने विवशता प्रकट की।

"अच्छा जा, मैं आती पिच्छू। मैं समझाएगी सीताबाई को। दो-तीन दिन के वास्ते अपना काम पर किसी को बदली में भेजेगी तो ठीक।"

चोट तो गहरी आई ही है। नहीं तो पाँच बजे बिस्तर छोड़ देनेवाली माँ आज जगी हुई मिली, मगर उठकर दूध लाने की उसकी हिम्मत नहीं हुई।

बड़ी मुश्किल हुई चाय बनाने में। स्टोव जलाने की आदत जो नहीं। एक बार को मन में आया कि माँ से ही कहे कि वही स्टोव जला दे उठकर। फिर उसे तंग करना उचित नहीं लगा। वह जागती हुई होने के बावजूद बिल्कुल मरणासन्न मुद्रा में निश्चेष्ट पड़ी दिखी, उसकी अनगढ़ खटर-पटर के बावजूद।

चाय की कप-बसी उठाए उसने आहिस्ता-से माँ से उठने और चाय पी लेने का आग्रह किया। उसे लगा, माँ चाय लेकर उसकी चुस्ती-फुरती पर चकित-सी प्रसन्न हुए बिना नहीं रहेगी, लेकिन माँ के चेहरे पर कोई भाव नहीं उपजा। कहीं कुछ था तो पीड़ा की कराह-भरी सलवटें। वह उदास हो आया। माँ कुछ तो कहती, कुछ भी। प्रशंसा न सही, एक सहज निहार ही। पर चाय खत्म कर कहा भी तो इतना, "दो-चार बाल्टी पानी भर ले, बंडू, नईं तो अक्खा दिन पानी पीने का वांदा होएंगा।" कहते-कहते वह तुरन्त औंधी हो गई पलंग पर।

दोनों हाथों में बाल्टी लटकाए हुए वह नल पर पहुँचा तो वहाँ का सारा दृश्य देख अबूझ-सा ठिठक गया। लाइन में खड़ी दो औरतों में बेहयाई से ठनी हुई थी...

"ये लम्बर तो मेरा होता, भरने तू लगी?"

"जबान सँभाल! चौबीस लम्बरवाली के पिच्छू लम्बर मेरा होता। वो भर चुकी, मैं भर रही। मँगता तो पूछ उसको! पूछ न!"

"मैं भर रई...राँड़! सुबू चार बजे उठकर मैं लाइन लगाई, तेरी खपसूरती देखने का वास्ते?"

"काय के वास्ते उठी वो तू जान, पन गाली मत दे। समझी...नईं तो थोबड़े पर लात दूँगी।"

"चल री 'समझी' की बच्ची! किसको समझाती तू? तीन-तीन खसम छोड़ के आई मेरे

थोबड़े पर लात देने? आईना देख, कुतरी, आईना!"

"हज्जाम की...तू बिन ब्याही बैठी मोहल्ला खराब करे। बोल तो तुझे भी करवा दूँ एक? बूता है सँभालने का?"

"ये ये...! सुबू-सुबू एइसा भांडण (झगड़ा)? रात पाली करके आया मैं। खाली-पीली भंकस नईं मँगता।" अचानक अपनी खोली का दरवाज़ा खोलकर पाठक दादा शेर-सा दहाड़ा, "गुपचुप पानी भरो, नईं तो सब साली का हण्डा उठाकर फेंक दूँगा। एकदम बोमड़ी (शोर) नईं। सोने का है मेरे को। समझा?"

नल पर सन्नाटा छा गया। सिर्फ पानी की पतली धार की आवाज़ खामोशी तोड़ने लगी।

पाठक दादा के बारे में झोपड़पट्टी में तमाम नई-पुरानी अफवाहें हैं। जेब में नोट की गड्डी डालो और किसी की भी गरदन रेतवा लो। पाठक दादा की रात पाली का मतलब है—कहीं किसी के दिन पूरे हुए!

पाठक दादा की खोली का दरवाज़ा बन्द होते ही उसे लाइन में लगने की हिम्मत आई। औरतों की चख-चख ने उसे सहमा ही दिया था।

उसे खड़े हुए दो-चार पल भी नहीं बीते होंगे कि अचानक रफीक की अम्मी की नज़र उस पर पड़ी। अम्मी वहीं से चिल्लाई, "बंडू, आ तू भर ले पहले।"

वह दुविधा में पड़ गया कि लाइन तोड़कर आगे बढ़े या अम्मी को मना कर दे। कहीं ऐसा न हो कि कुछ देर पहले खत्म हुई चख-चख पलटकर उस पर पिल पड़े!

पानी-वानी सब माँ ही भरती है। यहाँ के कायदे-कानून उसकी समझ से परे हैं। अम्मी ने शायद उसके संकोच को ताड़ लिया। उन्होंने उसे आगे बढ़ आने के लिए दोबारा पुकारा। उनके दोबारा पुकारने के बावजूद लाइन में लगी औरतों से किसी ने आपत्ति नहीं प्रकट की तो उसका साहस बँधा। लाइन में लग के उसका नम्बर आने का मतलब है—पूरे आधे घण्टे का कुंडा। संकोच छोड़कर वह अपनी दोनों बाल्टियाँ उठाए अम्मी के निकट जा पहुँचा। रफीक की माँ ने अपनी बाल्टी सरकाकर तत्काल उसकी बाल्टी नल के नीचे कर दी।

"पक्का ढाई महीने के बाद घर आया था खड़ईस। जालिम ने बहुत मारा सीताबाई को। सिर फट गया बेचारी का।" रफीक की माँ पार्वती चाची को उसके घर की खबर दे रही थीं, "उसी छिनाल के पीछे..."

"अच्छा, कमबख्त रेती किदर वो?"

"वहीं सफेद पुल के झोपड़पट्टी में। उसको भी पहले मरद से दो बच्चे हैं।"

माँ भी तो कल दोपहर...तो माँ के चिड़चिड़ाने की वजह सिर्फ बाप का पीना ही नहीं! बाल्टी अभी आधी भी नहीं भरी थी, पर उसका मन हुआ कि वह बाल्टियाँ छोड़-छाड़कर वहाँ से भाग ले! है कोई ठौर-ठिकाना जहाँ उसके घर की चर्चा न हो?

राँड़ माने कोई औरत।...

राँड़ माने गाली, अब तक यही जानता था वो।...

चार रोज़ बाद माँ आज भली-चंगी लग रही थी।

सिर में लगी चोट की दूसरी दोपहर डॉ. जोगलेकर माँ के एकाएक तेज़ हो गए बुखार से घबरा गए थे। उन्होंने उससे कहा कि हो सकता है, माँ के सिर का एक्स-रे निकलवाना पड़े। एक्स-रे विले पार्ले नानावटी में होगा। वे डॉ. दीक्षित के नाम पर चिट्ठी लिखकर दे देंगे। वह माँ को लेकर सुबह नौ बजे एक्स-रे विभाग में पहुँच जाए। लेकिन तीसरी सुबह बुखार के एकदम नीचे आ जाने से उसने उनके चेहरे पर राहत देखी। राहत डॉ. जोगलेकर के चेहरे से होती हुई उसके दिमाग को भी सहज कर गई, वरना माँ की खोपड़ी में पहुँची चोट के भय से उसके प्राण सूखने लगे थे। सिर की पट्टी डॉ. जोगलेकर अलबत्ता रोज़ ही बदलते रहे। अन्नाबाई ने माँ के आग्रह पर चार रोज के लिए उनके पाँचों घरों में एक वक्त काम करने का ज़िम्मा ले लिया। न कोई मिलता तो उसने माँ को आश्वस्त कर दिया था कि वह उनके घर बता दे। जैसा भी उससे बन पड़ेगा, वह अपने अनाड़ी हाथों से भाँडी-कटका निपटा आएगा, मगर अन्नाबाई की सहानुभूति के चलते इसकी नौबत नहीं आई।

मौका ताड़कर उसने माँ के सामने फौरन अपने धन्धे का प्रस्ताव रख दिया।

पिछले चार दिनों से वह पाठशाला भी नहीं गया। माँ की अस्वस्थता की वजह से नागा हुआ। पर आज सुबह आँखें खुलते ही माँ हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गई कि अब वह ठीक है, वह उठे और नहा-धो के अपनी पाठशाला जाए। उसकी बीमारी के चलते उसकी पढ़ाई की कसकर उपेक्षा हुई। अब नुकसान नहीं होगा। लेकिन उसने माँ को अकेला छोड़कर पाठशाला जाने से साफ मना कर दिया।

धन्धे की बात सुनकर माँ उखड़ गई। दुखी होते हुए बोली, "मैं सोचती कि तू लिख-पढ़के बड़ा आदमी बने..."

"धन्धेवाले पढ़े-लिखे से जास्ती कमाते।" समझ के अनुसार उसने तुनककर अपना तर्क प्रस्तुत किया, "तू फकत मेरे को पाँच रुपया दे, शाम को परत ले लेना। मैं केले की फेरी लगाएगा।"

"मेरे पास पईसा नईं।" माँ ने खीझकर साफ मना कर दिया।

"तेरे पास नईं तो पीछे एक काम कर। अपनी पंजाबन सेठानी से माँग कर दे न।" उसने लगभग चिरौरी-सी की।

"कइसा देगी सेठानी? उससे तो मैं अक्खा मेना का पगार एडवांस लिया।"

माँ की रुखाई के बावजूद उसने हिम्मत नहीं हारी। "आशियानेवाली जोशी बाई से माँगकर दे।"

"कमली को इंसल्ट लगता, दो-तीन दफे जरूरत पड़ने पर मैं उधर माँगने को गई होती। एक दफा तो कारड पे राशन छुड़ाने को होता। बोली, ऐसा बीच में भीख माँगने को नईं आना, माँ..."

समझ गया।

माँ की लगातार बहानेबाज़ी ने उसे झुँझला दिया। पढ़ाई के लिए छोड़कर अन्य किसी काम की खातिर वह उसे पैसे नहीं देगी। खैर, निरुत्साहित होने की ज़रूरत नहीं। जोड़ लेगा पैसे। एक तरकीब है उसके हाथ में। तीन बजे सोसाइटी वाली राशन की दुकान खुलती है। कार्ड पर भराए सामान को उठवाने के लिए लोग उधर हमाल खोजते हैं। कुछेक छोकरों को उसने वहाँ खड़े हुए देखा है हमाली के लिए। वह भी उनके बीच जाकर खड़ा हो जाएगा। राशन की दुकान बन्द होने तक उसके पास केले की फेरी के लायक पैसे जुड़ ही जाएँगे।

दोपहर उतरनी शुरू भी नहीं हुई थी कि वह बन्द शटर के सामने चक्कर काटने लगा। कार्डधारियों की लाइन पहले से ही लग गई थी, जो उसके देखते-न-देखते हनुमान की पूँछ हो चली। तकरीबन घण्टे-भर बाद दुकान का शटर उठा। फुरती से परचियाँ कटने लगीं... चावल, गेहूँ, शक्कर...वह मुस्तैदी से एक भद्र महिला के पास जा खड़ा हुआ, जो थैलों में सामान भरवा रही थी।

“किदर ले चलना है बाई?”

वह चौकन्नी हुईं। उसने उसकी पतली हुलिया तौली। अपने झोलों पर सतर्क दृष्टि डाली। फिर तड़ाक से पूछा, “कितना लोगे? एक सौ बीस नम्बर में जाना है‘साहित्य सहवास’। लिफ्ट है नहीं।”

“जो जी में आए, दे देना।” वह विनम्र हो आया।

“जो जी में आए नहीं, साफ-साफ बता दो। बाद में बहुत टण्टा करते हो तुम लोग। कौन दस घण्टे चिक-चिक करता बैठेगा?”

“चलो, एक रुपया दे देना बाई।” उसने हँसकर झोलों की तरफ हाथ बढ़ाया।

“क्या? क्या बकते हो? खैरात बाँटने के लिए खड़ी हुई हूँ क्या मैं राशन की दुकान पर? चालीस पैसे में ले जाते हैं छोकरे। चालीस पैसे में ही ले चलना है तो उठा झोले, नहीं तो छोड़ दे। किसी और से उठवा लूँगी मैं।”

“पच्चीस किलो वजन है, मेम सा’ब, कुछ तो सोचिए!”

“है तो क्या?” भद्र महिला की भृकुटियाँ चढ़ गईं।

बहस फिजूल है, उसने सोचा। यह भी देखा कि तीन-चार छोकरे आम की गुठली पर लपकती मक्खियों-से झोलों के करीब उसके हटने की ताक में आ खड़े हुए हैं। बिना चूँ-चपड़ किए उसने झोले उठाकर पीठ पर लाद लिये। हालाँकि मन प्रतिवाद करने को उबलने लगा—दोस्त फरीद ने कहा था, कुछ नहीं मिलेगा इधर। कहने को साले अपने को ‘फिक्स्ड रेट’ वाले बताते हैं और सच भी है कि बड़ी-बड़ी दुकानों में बिल पर लिखी रकम बड़ी शान से दे आएँगे, मगर गरीबों की मज़दूरी में मोल-भाव किए बिना इन्हें खाना नहीं पचने का। दस पैसे भी कम करा लिये नहीं कि ऐसे प्रसन्न होंगे ये बिल्डिंगवाले, जैसे बैंक उठकर ससुरों के घर आ गई हो।

वज़न बहुत है! पीठ और कन्धे टूटे जा रहे हैं। कन्धे उसके इतने नाजुक हैं कि पाठशाला की कॉपी-किताबें उठाते दुखते हैं। अपनी कॉपी-किताबों को दोगुना-तिगुना कर ले

तब भी वे इतनी भारी नहीं होने की।

शाम तक पौने तीन रुपये इकट्ठे हो गए। चवन्नी बीड़ी के लिए छिपाकर बाकी रेज़गारी उसने माँ की हथेली पर रख दी। बीड़ी की आदत नहीं। कभी रफीक उसे मिलने पर पकड़ा देता है तो एकाध सुट्टा वह नज़र बचाकर खींच-खाँच लेता है।

उसकी पहली कमाई माँ ने मुट्ठी में कस, आँखें मूँद, माथे से लगाई, फिर फल्ली के एक कोने में विराजे गणपति बप्पा के सामने ले जाकर रख आई। उसके झाईं खाए ताम्बई चेहरे पर क्षण-भर को रोशनी की लपट-सी भभकी, सिर्फ क्षण-भर को। उसने देखा तो वह एक अव्यक्त किस्म की स्फूर्ति से भर उठा। राशन के झोलों का बोझ अचानक उसकी कॉपी-किताबों-सा हल्का हो आया।

सुबह पाठशाला के लिए नहीं उठ पाया। बदन पके फोड़े-सा टीस रहा था। किसी हालत में आज दुकान पर खड़े हो हमाली नहीं होने की। ज़बरदस्ती खड़ा हुआ भी तो ज़रूर किसी सेठ-सेठानी का राशन गिरा देगा।

माँ उसकी हालत पर तरस उठी, "नईं मँगता मेरे को ऐसा पइसा।"

उसने माँ के चेहरे की ओर गौर से देखा। उसका ताम्बई बैंगन-सा गोल चेहरा अचानक चूल्हे में भुना हुआ-सा, झुर्रियों-पटा महसूस हुआ।

देह के साथ उसके दिमाग की नसें भी टीस रहीं। पहली बार उसे अनुभव हो रहा, देह ही नहीं दुखती, दिमाग भी दुखता है। खोपड़ी के अन्दर बैठा दिमाग रफीक के शब्दों में'भेजा'। 'अब भेजे से काम ले'रफीक का आम जुमला है। इसी जुमले से वह उसे लताड़ता रहता है। उसे ही नहीं, गली के बाकी छोकरों को भी आतंकित किए रहता है। उन सबको लगने लगा है कि निश्चित ही रफीक की खोपड़ी में उन सबकी बनिस्बत ज़्यादा बड़ा और तेज़ भेजा है। उसके बड़े और तेज़ भेजे ने उन्हें अपने भेजे से काम लेने की 'टिरेनिंग' दी है। मगर रफीक ने यह नहीं बताया कि भेजा दुखता भी है और दुखता है तो कोई भी गोली घुटक लो, नहीं शान्त होता!

झोंपड़ी की छत से उमस टपक रही है।

दोपहर में उसे सोने की आदत नहीं। सोने की कोशिश कर रहा है, मगर नींद नहीं आ रही। उसे अन्दाज़ा-भर था कि माँ आज बाप को ढूँढ़ने सफेद पुलवाली झोपड़पट्टी में उस औरत के घर भी गई है। बाप के पीछे माँ का इस तरह हैरान होना उसे तनिक नहीं पचा। क्यों गई? घबराकर? हारकर या कोई और बात है, जो उसे नहीं पता? इधर माँ के भाँडी-कटका के दो घर छूट गए। एक सेठानी का तो तबादला हो गया, दूसरे ने तीन साल पुराना काम छीनकर नई बाई रख ली। माँ ने खोदने पर बताया कि चिकनाई के चलते हाथ से सेठानी के कीमती डिनर सेट के दो डोंगे रपटकर चूर हो गए।

'बाप के पास गई थी क्या?' पूछने पर माँ साफ मुकर गई।

वह खुद भी परेशान है। हमाली वाकई उसके वश की नहीं। पिछले छह रोज़ से वह रफीक के घर के चक्कर लगा रहा है। रफीक न जाने कहाँ बिलाया हुआ है। भेंट ही नहीं हो पा रही। रफीक से उसे बड़ी उम्मीदें हैं। पिछले हफ्ते रफीक ने कहा था, "एरी-फेरी लगाने का चक्कर छोड़, मेरे साथ धन्धे पर खप। माँ कसम, खीसे पत्थर के सिलवाने पड़ेंगे, पत्थर के।"

रफीक का धन्धा क्या है, उसे खबर नहीं।

चलो, जो भी हो। मगजपच्ची से फायदा? करना है, तो करना है। आम बिना गुठली के आम नहीं। साथ उसको भी चाटना पड़ता है। आम खाना है, गुठली नहीं चाटनी, कैसे चलेगा? उधेड़-बुन खत्म हुई। अब रफीक गधे के सिर से सींग-सा गायब है। हसन चाचा से भी कह रखा है कि उसके लायक कोई भी काम हो तो बेझिझक बताएँ। संगी-साथी भी जानते हैं। परसों बहराम पाड़ावाले चन्दू ने उसे घर आकर खबर दी थी कि उसके लायक एक नौकरी है। बान्द्रा स्टेशन के तीन नम्बर प्लेटफॉर्म पर जो 'चा-पानी' की कैण्टीन है, उसमें एक छोकरे की सख्त ज़रूरत है। उसके मिलते ही नौकरी पक्की। वह फौरन मिलने गया। लेकिन कैण्टीनवाला बेईमान लगा। पगार बीस से ऊपर एक पाई नहीं। खाना-नाश्ते के नाम पर सिर्फ चाय-पाव! ड्यूटी सुबह सात बजे से रात नौ बजे तक। उसे नहीं जमा। चाय-पाव पर दिन कैसे कटेगा?

घर की कुण्डी खड़की। माँ, बाप, लक्ष्मी अम्मा, हसन चाचा,...कौन हो सकता है?

"कौनऽऽऽ?" वह किवाड़ों की ओर लपका। खोलते ही सामने रफीक को खड़ा देख खुशी से उछल पड़ा। उछलकर लिपट गया।

"अम्मा ने खबर दी कि तूने रोज चक्कर मारे..."

"मारे न!...पन तू किधर?"

"अपुन हफ्ता-भर के वास्ते अहमदाबाद होता।"

"अहमदाबाद?"

"तू नईं समझेगा। वो छोड़ तू...काम की बोल?"

"क्या बोल? बात हुई थी न तेरे से?"

"हूँऽऽ, हुई।"

"मैं धन्धा करने को माँगता, पढ़ाई-वढ़ाई छोड़ दिया।"

"वारे मेरे राजाऽऽ, आया न लाइन पे। अबे, पहले नक्शा क्यों मारा? चल देर से आया, दुरुस्त आया...केले की फेरी करेगा। टिरेन में रूमाल, कंघी, आरसी बेचेगा। तो साऽऽला बेच कंघी, आरसी!" रफीक ने मखौल उड़ाते हुए गरमजोशी से उसकी पीठ पर धौल जमाई। रफीक की धौल से यारी टपकी।

वह खिसियाया, "केले की फेरी मारी न दो दिन लोकल में।"

"खुद खाया कि बेचा?"

“बेचा, पन...” जवाब में हँस पड़ा।

“देखो, धन्धा तो बोत धाँसू है, पन तू लल्लू के माफिक रहेगा तो नईं चलेगा।”

“तू बोल तो!” उसने चुनौती स्वीकारी।

“हिम्मत करेगा?”

“हिम्मत की मत पूछ।” उसे ताव चढ़ आया।

“तो सुन।” रफीक उसका हाथ अपने हाथ में आत्मीयता से दबाकर कान में फुसफुसाया।

सुनते ही वह करेण्ट खाया-सा छिटककर अलग हो गया।

“पन पोलिस का लफड़ा?”

“हो गया, राजा तेरे से धन्धा...” रफीक ने खिल्ली उड़ाई, “फिर तो बबुआ, मुँह में चुसनी डाल के बइठ...चुसनी! क्या?”

“काय को मेरी फिरकी लेता...कभी किया नईं न, तो जरा लफड़ा-विफड़ा से डर लगता। पन, करेगा मैं। जो बोलेगा, वो करेगा।”

“ये हुई न मरदवाली बात।” प्रसन्नता से उसके हाथ पर अपना हाथ पटकता हुआ रफीक खिल आया। समझाता हुआ बोला, “रिसक तो है, पर तू ठहरा अपना पुराना यार! जमाएगा तुझको। ये सौ का पत्ता रख, खर्च-बिरच को।”

दूसरे रोज़ वह पूरी तरह हिम्मत बटोरकर, बताए हुए थिएटर की बुकिंग खिड़की पर ठीक साढ़े नौ बजे जा खड़ा हुआ। काफी भीड़ थी। रफीक ने कहा था कि खिड़की पर पहुँचकर वह बुकिंग क्लर्क के सामने तीन उँगलियाँ उठा दे। बीस टिकट उसके खीसे में होंगे। सब कुछ गुपचुप व होशियारी से होना चाहिए। बगलवाले को भनक न हो। चौकस सतर्कता बरती उसने। पलक झपकते बीस टिकट उसकी जेब में थे। दस तीन से छः के शो के, बाकी छः से नौ के। रफीक ने यह भी कहा कि अभी इतनी ही टिकटों से उसे बेचने का गुर सीखना होगा। गिराक को शेंडी लगाने का गुर सीखते ही उसे ज़्यादा टिकटें निकालने की ज़िम्मेवारी उठानी होगी।

टिकटें लेकर सिनेमा हॉल का बरामदा उतरते ही एक काले-से गट्टे छोकरे ने उँगली के इशारे से उसे अपनी ओर बुलाया।

“मैं?” उसने सकपकाकर अपनी अगल-बगल देखा।

“तू ही, आ इधर!”

“चल उदर बेकरी के पिच्छू चल...थिएटर में तेरा आज पहला दिन है न? यार लोग ने तेरे को दावत दिया!”

उसे लगा, रफीक ने इनसे भी उसके बारे में कुछ कह रखा होगा, मगर इस कल्लू ने उसे तीन उँगली क्यों नहीं दिखाई? फिर भी, वह बिना हील-हुज्जत के सहज भाव से उसके पीछे चल दिया। मगर सँकरी गली में पहुँचकर सनका। छह-सात छोकरे उसे चील-झपट्टावाली

मुद्रा में तने खड़े दिखे। उनकी मंशा भाँपते देर नहीं लगी। वह भाग निकलने की सोचे-न सोचे, तब तक उनमें से एक ने झपटकर उसकी गरदन माप ली, "बीस टिकट काय के वास्ते खरीदा, तेरे बाप की बारात आती पिक्चर कूँ?"

वह चुप रहा। खीझ हुई अपने पर। भयंकर असावधानी हो गई उससे।

"मूँ में जबान नईं?"

"खोल के देख!" दूसरे ने पहले को उकसाया।

"नया न, शरमाता। खोलेगा, अपने-आप खोलेगा।"

झूठ नहीं चलेगा। सब-के-सब दाढ़ी-मूँछवाले। उससे तगड़े, मज़बूत। उसकी मसें-भर भीगी हैं। बोला, "बिलैक के वास्ते..."

"बिलैक के वास्ते?" उसका ही वाक्य दोहराने के साथ उसे एक ने कॉलर पकड़कर उठाया और तड़ से ज़मीन पर पटक दिया। उसके ज़मीन पर औंधे होते ही लात-घूँसों की बौछार होने लगी। वे उसकी देह से गेंद की तरह खेलने लगे। कंकड़ियों और तीखे डगढ़ों (पत्थरों के छोड़े टुकड़ों) से होंठ कट गए। कुहनियाँ छिल गईं। खून से भर उठा। दाएँ घुटने की हड्डी उतर गई-सी लगी।

उसे शिथिल हो लुढ़कते-लुढ़कते, प्रतिवाद न करते देख उनके क्रोध पर छींटे पड़े। उन्होंने हाथ-पाँव चलाने बन्द कर दिए। एक ने उसकी बुश्शर्ट में से टिकट निकाल लिये। दूसरे ने हुमककर आखिरी लात जमाई।

"फूट...कल से कम्पाउण्ड में नहीं दिखना। दिखा तो एकच टाँग पे घूमता दिखेगा। रफीक के बाप का थिएटर नईं।" चेतावनी देकर सातों फुर्र हो गए।

दूसरे रोज़ खासा हंगामा हुआ। रफीक ने उनके गैंग लीडर नारायना से बात की। दोनों तरफ के छोकरों की भिड़न्त होते-होते बची। किसी तरह मामला रफा-दफा हुआ। पैसे वापस मिल गए। मुनाफे के साथ टिकट तो उन्होंने बेच ही लिये थे। यह भी समझौता हो गया कि वह फिलहाल उसी सिनेमा हॉल पर खड़ा होगा। नारायना को कमाई में से उसका हिस्सा देना होगा, रफीक को नहीं। नारायना को क्यों, रफीक को क्यों नहीं? रफीक ने उसके खरोंच खाए कन्धे को थपकाया, "वो सब पचड़े में मत पड़। तू फकत अपना काम देख।"

वह भी उनकी तरह चूहे को टोहती बिल्ली-सा भीड़ में चक्कर काटने लगा, "तीन का छः, तीन का छः...बालकनी दस, बालकनी दस..."

पचीस-तीस रुपये रोज़ रात को उसके हाथ में आने लगे, नारायना और खिड़कीवाले क्लर्क श्रीवास्तव बाबू का हिस्सा पहुँचाकर। इतवार की बात कुछ और होती। चारों 'शो' में कहीं 'हाउस फुल' का पाटिया टँग जाए तो पौ बारह। प्रेम में पड़े छोकरे-छोकरियाँ पचास तक देने को राज़ी हो जाते। औरों का भी यही हाल। टैक्सी में पैसे फूँककर आनेवाले बिना फिल्म देखे लौटें कैसे?

लेकिन ऐसे 'हाउस फुल' और 'पेशल संडे' हफ्तों से ठण्डे चल रहे। कोई धाँसू पिक्चर

ही थिएटर पर नहीं चढ़ रही।

बुकिंग खिड़की के लिए निकलने से पहले, वह माँ के हाथ में बीस रुपये रख देता। शुरू में अविश्वास और संकोच से घिरी माँ उससे पैसे के विषय में बार-बार पूछती कि आखिर इतने पैसे कहाँ से और कैसे आए उसके पास? वह झूठ बोलता कि 'कन्ट्राज़' पर काम कर रहा है। ट्रक लोड करने के उसे पच्चीस रुपये रोज़ मिलते हैं।

माँ को उसके पैसों की आदत पड़ने लगी है! कभी दस-पाँच कम देता है तो उसे सँभालकर खर्च करने का उपदेश पिलाने लगी है। आगाह करती कि काम से जी न चुराए, आज नियमित काम मिल रहा है, कल मिले, न मिले! एक बात और। अपनी फिजूल चाट-चूट की आदत से भी बाज़ आए। जो खाना है, उसे घर में बनवाकर खाए।

दूसरी बीड़ी खत्म कर, टोंटे को पाँव से रगड़कर वह दबे पाँव खोली में घुसा। सिटकनी चढ़ाई और चटाई पर पड़ गया।

अचरज हुआ सिटकनी न चढ़ी होने पर। भूल गई शायद माँ? वैसे भूलती नहीं कभी। हाथ बढ़ाकर धीमी कर दी लालटेन की धीमी लौ दीवारों पर लुपलुपाती, भूरी उजास लिये थर्राने लगी। माँ को आज जल्दी नींद लग भी गई। जल्दी नींद आती नहीं उसे इधर। इस बात का भी विस्मय हुआ। हो सकता है, आज अधिक थक गई हो। अचानक महसूस हुआ, वह जो समझ रहा है कि माँ गहरी नींद में पड़ी सो रही है, उसका भ्रम है। लोहे के पलंग की चरमराहट में उसे किसी तड़फड़ाती बेचैनी की आहट मिली। क्या बात हो सकती है?

उसने करवट भर गरदन उचकाई। स्तब्ध रह गया। अनुमान सही था। पलंग पर उठकर बैठी माँ घुटनों पर ठुड्डी टिकाए, टाँगों को बाँहों से घेरे, झोंपड़ी की दीवार को एकटक ताकती मिली। माँ की आँखों की पनीली उदासी आँखों में सीधी न देख पाने के बावजूद उसे साफ दिखाई दी। माँ उसे लेकर तो परेशान नहीं? हो सकता है, उसके धन्धे की खबर कहीं से लग गई हो उसे। आजकल उसका इलाका बदला हुआ है। वह गेइटी, गैलेक्सी छोड़कर मलाड के एक नए थियेटर पर धन्धा करने लगा है। याद नहीं पड़ता कि वह कभी किसी परिचित से टकराया हो।

हाथ बढ़ाकर उसने लालटेन की बत्ती उकसाई।

रोशनी कुछ ज़्यादा हो जाने से माँ पर कोई असर नहीं हुआ। माँ पूर्ववत बैठी रही। यह भी हो सकता है कि बाप घर आया हो? बाप घर आया होता तो माँ साबुत बैठी नहीं दिखाई देती। उसने भेदती नज़र से माँ की देह को टोहने की कोशिश की। कोशिश व्यर्थ गई। बाप के घर आने का कोई अवशेष ज़ख्म के रूप में माँ की देह पर मौजूद नहीं। ओह, कैसी अनाप-शनाप अटकलें लगा रहा है। भूल गया कि कल माँ ने ही उसे बताया था कि आज दोपहर वह कमली के घर जाएगी। जोशी बाई सपरिवार तीन-चार रोज़ के लिए अपनी ननद के घर पुणे जाने वाली हैं। उनके ननदोई की मौत हो गई है। जोशी बाई के वापस लौटने तक कमली उनके पास ही आकर रहेगी। कमली कहाँ है? कमली को घर पर ही होना चाहिए। माँ कल

कितनी खुश थी, उमंग से भरी हुई कि वह कमली के सूने पाँवों के लिए चाँदी की तोड़ियाँ खरीदकर लाना चाहती है। सयानी हो रही है पोरगी। अब तक कुछ कान-गले नहीं डाला। निर्धन-से-निर्धन अपनी बेटी को छूँछा नहीं रखता।

उसे माँ की उमंग से खुशी हुई। कमली के आने की खबर सुनकर तो और भी।

"हमेशा के जैसा देर नहीं करना।" हिदायत नहीं, इसरार किया था माँ ने। चलते-फिरते यह सूचना भी दे दी थी उसे कि 'सीपी' और 'कोलमी' (चावल की किस्म) भात पकाएगी—कमला की पसन्द का खाना। बस, भागा-दौड़ी के चक्कर में याद नहीं रहा कि वह सुबह माँ से जल्दी आने की हामी भर गया था। पुरानी हिट फिल्म लगी हुई है थिएटर में 'संगम'। राजकपूर, वैजयन्तीमाला, राजेन्द्र कुमार को देखने के लिए टूटे पड़ रहे हैं लोग। माँ की लम्बी निःश्वास की दस्तक से उसकी सोच का तार टूटा।

"कमला आनेवाली थी न?"

माँ ने कोई उत्तर नहीं दिया, जैसे उसका प्रश्न कानों में पड़ा ही न हो। उसने संकोच के साथ अपना प्रश्न दोहराया।

"नहीं आई।"

"काय को?"

उत्तर में चुप्पी।

"काय को नईं आई?" उसके स्वर में उतावली थी।

"उसको इदर नईं आने का है!" माँ का स्वर काँपा।

"क्या?"

माँ सचमुच रो रही थी। अवरुद्ध कण्ठ से बोली, "कमलाच इदर रैने को तैयार नईं। जिद्द करके वो उनके साथ पूने को गई। मैं लेने को गई तो बोली, "मैं बाई के साथ जाएगी। मेरे कू झोपड़ी में नहीं आने का। पंखा नईं न उदर। ऊपर से संडास में लाइन लगाने का लफड़ा...तुमको आदत पड़ गई मोरी में पिशाब करने की, मेरी आदत छूट गई। उसी में पिशाब करना, उसी में बरतन घिसना, उसी में नहाना, हमको नईं चलता..."

'हमको' सुनकर वह चौंका। यह माँ का शब्द नहीं। यह अपनी औकात भूल बिल्डिंगवालों की बिरादरी में स्वयं को शामिल कर लेने के मुगालते की छूट है। सुख-सुविधाएँ खैर उसे क्या मिलनीं। सुख-सुविधाओं से अटे घर के पाखाने के सामने, शतरंजी बिछाकर सो रहने की छूट ही कमली के लिए घी के स्वाद की बनिस्बत, उसकी तेज़ महक पीकर स्वाद पाने की सन्तुष्टि है, और कुछ नहीं। आम दिखा और गुठली चुसाकर कुत्ता बनाने की कला कोई इनसे सीखे! साआल्ली नाटकबाज मास्टरनी जोशी बाई! घी सुँघा-सुँघाकर उल्लू की पट्ठी कमली को ऐसी कुतिया बना देगी कि कमली जीवन-भर ऊँची इमारतोंवालियों की देहरी पर उनकी भाँडी घिस, जूठन चाट-चूट, कुतिया-सी परकी रहेगी।

मामला समझ में आ गया।

माँ की पीड़ा बड़ी विदारक है—कुछ छूट जाने, कुछ खो जाने की। दारुड़िए पति के घोर तिरस्कार से बित्ता-बित्ता छलनी हुई माँ अपनी चहेती औलाद की अप्रत्याशित उपेक्षा बरदाश्त नहीं कर पा रही।

"दिमाग ठिकाने नईं कमली का, हरामखोर को चरबी चढ़ गई...झापड़ क्यों नईं चढ़ा के दिया जोशी बाई के सामनेच? स्टैंडर्ड मारती माँ के सामने?" वह क्षुब्ध हो उठा। उसे लगा, कमली ने उसके मुँह पर भी थूक दिया। हर समय 'दादा, दादा' करनेवाली कमली के दिल में उससे मिलने की कोई ललक शेष नहीं?

"तू कुछ भी बोल, ये मास्टरनी पर अपने को खातरी नईं। आने दे लौट के पुने से, मैं देखता।" उसके स्वर में आग थी।

माँ ने गरदन घुमाई, "फायदा नईं, अपना सिक्काच खोटा।"

"अब्बी तू रोने का नईं, तेरे को मेरा शपथ! सो जा! कल सुबू मेरे को अपने साथेच उठाना, जल्दी बुलाया सेठ।" कहकर उसने अपने चेहरे को कोहनी से ढक लिया।

काफी देर बाद माँ के लेटने की आहट हुई। उनके करवट भर लेने के बावजूद उसने महसूस किया कि माँ सो नहीं पा रही। घुमड़-घुमड़कर सिसकियाँ भरने लगती है। उसे परेशानी हुई। उठकर उसे मनाए? मनाए कैसे? कहे क्या? जो थोड़ा-बहुत दुःख का आवेग कम हुआ है, फिर न पलट पड़े! अपने बिस्तर पर उठ बैठा। कुछ देर बैठा रहा। माँ की सिसकियों का अन्तराल बढ़ रहा है। बड़ी देर तक कोई सिसकी नहीं आई तो बिस्तर पर ढीला हो गया।

कल बड़ी धाँधल है। अमिताभ बच्चन की फिलिम का रिलीज है। खिड़की पर टूटनेवाली भीड़ को होशियारी से सँभालना है। रात का रोना-धोना सुबू पनवती साबित होता है धन्धे में। माँ क्या समझेगी? मलाड के लिए निकलने से पहले वह हनुमान जी के मन्दिर में सिर झुकाना नहीं भूलता। धन्धे पर कृपा होनी चाहिए न। उसके टेंशन की खबर नहीं माँ को। टिकट मुफ्त में भी लेनेवाला नहीं मिलता कभी-कभी, ऊपर से आपसी मारा-मारी। सभी चाहते हैं कि उनको उसी थियेटर पर धन्धा करने का चानस मिले जिसमें अमिताभ बच्चन की फिलिम लगनेवाली है। थियेटर की अदला-बदली के कायदे-कानून भी भूल जाते। छुरा-चाकू निकाल लेते। माँ का क्या! चार घण्टों का भाँडी-कटका निबटाया और चल दी मावसी (मौसी) के घर तफरीह करने। आजकल मावसी से बहुत पटने लगी है। पहले दोनों एक-दूसरे का मुँह देखना तक बरदाश्त नहीं कर पाते थे। चलो, ठीक है। जहाँ भी माँ का मन लगे, चैन मिले। बारह से पहले वह भी घर नहीं लौट पाता।

"तीन का तीस...तीन का तीस...बालकनी, पचास, बालकनी पचास..."

लोगों के चेहरों पर बुदबुदाता हुआ वह चक्कर-पर-चक्कर मार रहा है। पसीने छूट रहे हैं। पब्लिक एकदम ठण्डी है। अमिताभ की फिलिम है, टिकट-खिड़की बन्द है, फिर भी लोग टिकट बिलैक में लेने को तैयार नहीं। चिन्ता की बात यह है कि बरामदे में 'हाउस फुल' का

पटिया लगा हुआ है, मगर भीतर हॉल खाली है। वैसे यह धन्धे की पोल है, पर आज दाना फिट नहीं बैठ रहा। पब्लिक झाँसे में नहीं आ रही है। घूम-फिरकर लौट रही है। शो शुरू हुए भी दस मिनट हो चुके हैं।

जबरदस्त फटका लगनेवाला है।

उसके पास इस शो के पचास टिकट हैं, माथा घूम रहा है उसका। होगा क्या? इसीलिए चिढ़ रहा था रात माँ के रोने पर। कलह से कभी कुछ अच्छा हुआ है? काम बना किसी का?

एक युवक उसके करीब आया, "टिकट है?"

"कितना माँगता?" उसके चेहरे पर चमक दौड़ी।

"तीस टिकट! बालकनी के छः का तीन के भाव से दे दो तो ले लूँ।"

वह दुविधा में पड़ गया। आधे दाम में? अमिताभ की फिलिम के टिकट आधे दाम में! कैसा अंधेर है? ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। अमिताभ की फिलिम माने जैक पाट! आँख मूँदकर लगा दो पैसा! महीने-भर की कमाई हफ्ते-भर में! टिकट रद्दी में जानेवाले हैं, यह तो तय है। पर बुद्धिमानी इसी में है कि भागे भूत की लँगोटी भली। जो भी निकल आए। दिमाग में कौंधा कि एक साथी से मशविरा कर ले।

"जरा मिनट इदरीच ठैरना" कहकर वह भीड़ में गुम हो गया। अपने एक साथी के पास पहुँचकर पूछा, "एक गिराक बालकनी का तीस टिकट आधी कीमत में माँगता। दे दूँ?"

"थोड़ा रास्ता देख।"

"रास्ता क्या देखूँ? पब्लिक साऽऽली वापस जा रही है। मुद्दल भी नईं निकलने का।"

साथी उसकी बेसब्री से चिढ़ गया, "अबे, धन्धे का कुछ उसूल होता..."

"चुप बे, उसूल गया तेल लगाने। इतना खोट! मैं जो निकलेगा, वो निकलता।" वह स्वयं निर्णय लेता हुआ-सा उसके पास से हट आया और उसी युवक के करीब पहुँचा। उसने इशारा किया कि वह टिकट देने को तैयार है, पर यहाँ नहीं, वह पैसे निकालकर सामनेवाली मटन शॉप के पीछे आ जाए।

फुरती से उसने हिप पॉकेट से टिकट निकाले, गिने और युवक की ओर बढ़ा दिए। युवक के हाथ से पैसे लेकर जेब में रख ही रहा था कि अचानक एक अजनबी उस पर पीछे से आकर टूट पड़ा। उसने अजनबी के चंगुल से छूटने की जानमार कोशिश की, खूब छटपटाया, पर तब तक उसे कई अन्य लोगों ने घेरकर दबोच लिया। समझ गया, छूट भागने की कोशिश करना बेकार है। आज चढ़ गया सी आई डी के हत्थे।

थियेटर पर भी ज़बरदस्त छापा पड़ा। अन्दर सीटें खाली और बाहर 'हाउस फुल' का पटिया। उसके तीन अन्य साथी छोकरे पकड़े गए। बाकी सात छिटक गए।

हवा थी कि सी आई डी ने घूम-घूमकर पब्लिक को टिकट न खरीदने के लिए दबाव डाला, ताकि वह थिएटर के कर्मचारियों और काला धन्धा करने वालों की मिली भगत को रंगे हाथों पकड़ सके।

वह बन्द हो गया।

मलाड पुलिस चौकी में रात-भर उनकी खाल उधेड़ी गई। इंस्पेक्टर सामन्त लगातार पूछता रहा कि वह भकुर दे कि वास्तव में उनका सरगना कौन है और किस-किस सिनेमा हॉल पर उनके गुर्गे सिनेमा टिकटों की कालाबाज़ारी करते हैं। दूसरे रोज़ कुछ साथियों ने ज़बानें खोल दीं। नारायना पकड़ा गया। रफीक फरार हो गया। गिरगाँव का पाटिल और साकीनाका का फिलिप्स भी पकड़े गए।

माँ को खबर भेजी गई। माँ जामिन (ज़मानत) के लिए नहीं आई। रफीक के दोस्तों ने छुड़ाने की पूरी कोशिश की, पर ऊपर से बात आई थी, नीचेवालों ने छोड़ने में मजबूरी ज़ाहिर की। बस इतना हुआ, उम्र छोटी थी, अतः उसे 'डोंगरी बाल-सुधारगृह' भेज दिया गया। तीन दिन खोपड़ी के पीछे टमाटर-भर गुम्मा लिये वह कराहता चटाई पर बिलबिलाता पड़ा रहा। एक बाई डॉक्टर ने आकर जाँच की। सूई लगाई तब कहीं जाकर चौथी रात ठीक से सो पाया। इस दुर्गति और नरक की कल्पना सपने में भी नहीं की थी। बस, आँखों के सामने क्षुब्ध माँ का चेहरा डोलता रहा। सच्चाई कैसे पचा पा रही होगी? कैसे चला रही होगी उसके पीछे घर?

रफीक का छोटा भाई एक शाम अचानक 'डोंगरी बाल-सुधारगृह' में उससे मिलने आया। उसी ने माँ के बारे में खबर दी कि वह उसकी अम्मी से लड़ने आई थी। ज़बरदस्त गाली-गलौज किया अम्मी से कि रफीक की गलत सोहबत ने उसके सीधे छोकरे को बरगला दिया। तबाह कर दिया। उसका बंडू ऐसा नहीं था, खूब पढ़ता था। अच्छे नम्बर लाता था। कहना मानता था।

सुनकर वह फीकी हँसी हँस दिया।

माँ उससे मिलने तो आई नहीं। तीन महीने की सज़ा हुई उसे। रहना उसे 'बाल-सुधारगृह' के नरक में ही था। ऊँचे अहाते के किनारे लगे गुलाब के फूलोंवाला नरक! उस नरक में एक नहीं, बे-सींग सैकड़ों यमराज घूमते-टहलते नज़र आते। उन दैत्यों के बीच एक लम्बे स्कर्टवाली भली-सी रेखा ताई भी उनसे मिलने आतीं। उससे उसके अपराधी होने के कारणों तथा दबावों के बारे में पूछतीं। साथ-साथ कॉपी में कुछ लिखती भी जातीं। उसे समझातीं भी। साथ के कादर ने रेखा ताई का वास्तविक परिचय दिया। "डॉक्टर नईं रेखा ताई, कूंसीलर हैं, कूंसीलर! (काउंसिलर) खोपड़ी का डॉक्टर! हम लोगों का साऽऽला खोपड़ी पढ़ने को आती है।"

"ऐसी तफरी तो इस धन्धे में चलती रेती है, यार! कभी-कभी मलाई में मक्खी भी गिरती, तू घबराना नईं। जरूरत का सामान मैं पोंचाऊँगा..." रफीक के भाई का संकेत उसकी बीड़ी-पानी के खर्चे से था। कुछ नोट दिए भी उसे, "इदर का सुपरिटेंडेंट द्विवेदी अपुन को बोत मानता है।"

चटाई की झिरझिरी तीखी तीलियाँ पीठ पर कुँच रहीं।

नींद नहीं आ रही। ऊपर से मच्छर खून पी रहे। नींद आ जाए तो यही चटाई उसके

लिए डनलप का गद्दा साबित हो। पर हो तो हो कैसे! उस लम्बोतरे कमरे में उसे मिलाकर कुल इक्कीस लड़के हैं। कुछेक नाटे, कुछ बड़े। ठसे-मुसे। एक-दूसरे की टाँग-पर-टाँग चढ़ाए। उन्हें सोता हुआ पाकर उसे विस्मय होता। घर की चटाई और इस नरक की चटाई में उन्हें कोई अन्तर महसूस नहीं हो रहा? क्यों? क्या वे सब जानवाले मुर्दे हैं? और वह जानवाले मुर्दों के कब्रिस्तान में रह रहा? कब्रिस्तान की सफेद दीवारें देखकर उसे कितना डर लगता था! और यहाँ कब्रिस्तान में ही रहने को मजबूर है वह। उसे अपने रोंगटे खड़े होते महसूस हुए।

अचानक एक छोकरा नींद में चीखा। उसकी देह भय से एकबारगी काँप उठी! ठण्डे पसीने से नहाती। नींद में क्या देखा होगा उस छोकरे ने? क्यों चीखा वह? शायद चीखें ही शेष हैं उनके पास जागते-सोते। चीखें-ही-चीखें, किस्म-किस्म की। सभी इतने खौफनाक माहौल से आए हैं कि नींद में भी वे उन चीखों के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाते। उन्हीं में दलते-पिसते! कादर ने कल दोपहर अपना किस्सा सुनाया था। सुनकर वह अविश्वास से पलकें पटपटाता, माथे पर बल डाले घूरता रहा।

"बाप मेरा सिद्दा था। गऊ सरीखा। माँ का इश्क हो गया साऽऽला बनिये से। उसके संग भाग के उसके घर बैठ गई। बोत समझाया बाप ने। हाथ-पाँव जोड़ा। पन माँ के मगज में कुछ नईं चढ़ा, मेरा हवाला भी नईं। इज्जत-आबरू मिट्टी हुई। बाप का भेजा घूम गया। एक रोज माँ को अपना सामान उठाके ले जाने के बहाने घर कू लाया और पिलान के मुताबिक घासलेट डालकर फूँक दिया! पन वो मरी नईं। हस्पताल में उसने 'पोलिस' को बयान दिया कि स्टोव नईं फटा। बाप-बेटे ने मिलकर मेरे को फूँक दिया।"

"पिच्छू...?" भय से उसकी आँखें फट गईं।

"पिच्छू क्या?" कादर ने लापरवाही से सिर झटका, "बाप यरवदा जेल में और मैं इदर..."

उसे अचरज हुआ। कादर अपनी सगी माँ के बारे में कितने निर्मम भाव से बातें कर रहा था मानो वह अपनी माँ की करुण आपबीती नहीं, मोहल्ले के किसी घर में हुई दुर्घटना का बयान कर रहा हो—निष्ठुर, लगावहीन, बदले से भरा! क्यों घृणा से भर उठा कादर माँ के प्रति? क्यों नहीं हो सकता? अत्याचार दिल और आँखों का पानी मार देता है। मर गया कादर की आँखों का पानी? मिट्टी हो गई माया-ममता।

कनपटियाँ पसीने से चुहचुहाने लगीं। क्यों याद करता है कादर का किस्सा! जब से कादर ने सुनाया, भूल नहीं पा रहा। त्रस्त माँ याद आ रही है, जल्लाद बाप याद आ रहा है। किस्सा सुना सभी ने, पर सब बेखबर खर्राटे भर रहे हैं। एक वही...

अन्तर्द्वन्द्व चकिया में अँजुरी-अँजुरी अनाज-सा पीस रहा है...कादर ने ठीक किया? ठीक नहीं किया...नहीं, ठीक किया...उसे यही करना चाहिए था। बाप की इज़्ज़त-आबरू भी तो कोई चीज़ थी। बच्चे की माया-ममता सब झटक...

अपनी माँ की यातना बिच्छू के विष-सी दिमाग में लहरें भरने लगी।

उसे भी बाप से नफरत है। बाप को माफ नहीं करेगा वह। उसी के चलते माँ और गुड़िया-सी कमली को गुड़िया खेलने की उम्र में मास्टरनी के घर चाकरी करनी पड़ी। उसे बिलैक के धन्धे में मुँह काला करना पड़ा। कम कमाता है बाप?

कादर की माँ की तरह उसके बाप के ऊपर भी इश्क का भूत सवार है... रेखा और अमिताभ बच्चन सरीखा। इस नरक से छूटते ही वह सीधा सफेद पुलवाली झोपड़पट्टी का रास्ता पकड़ेगा। रफीक की अम्मी ने बताया था उसे कि कोई पुन्नपा की चाली है। तय है कि बाप उसी के घर मिलेगा। खलास करके छोड़ेगा उसको। टण्टा खत्म। माँ का क्या? जब से उसने आँखें खोली हैं, उसे भाँडी-कटका करके पेट पालते पाया। आगे भी पेट भर लेगी। मर्द का वजूद उसके लिए है ही कहाँ?

नसें तनाव से तड़कने लगीं।

छूटा तो पूर्व-निर्णय मुताबिक घर न जाकर सीधा सफेद पुल पर आया। परली तरफवाली झोपड़पट्टी पुल पर से स्पष्ट दिखाई दे रही थी। वहीं कहीं है पुन्नपा की चाली। चाली की एक खोली में वह 'राँड़' और उसका बाप! अभी नहीं भी मिला, तो वह उससे निबटे बगैर माँ के पास नहीं जाएगा। निबटने का सामान है उसकी कमीज़ के नीचे!

रेलिंग छोड़कर वह भीड़ में शामिल हो गया। तभी अचानक, भीड़ में उसे पड़ोसन लक्ष्मी अम्मा दिखाई दे गईं। वह अनायास उनकी ओर लपका। माँ के हाल-चाल जान लेने की उत्सुकता दबा नहीं पाया। पीछे से पुकारा, "लक्ष्मी अम्मा! लक्ष्मी अम्मा!"

लक्ष्मी अम्मा उसकी गुहार सुन चौंककर पलटीं। उसे सामने खड़ा पा प्रसन्नता से पुलकीं, "अइयो बंडू! तू? कब छूटा? दुबला बोत हो गया। खाने को नईं देते होते जेल में?" वे एक साथ तमाम प्रश्न कर बैठीं।

उसने अपने बारे में जवाब न देते हुए, अधीर हो, माँ के बारे में जानना चाहा, "माँ...माँ कैसी है, अम्मा?"

"माँ?" लक्ष्मी अम्मा की भौंहों में बल सिमट आए। पल-भर वह उसे खामोशी से ताकती रहीं, फिर विस्मय से भरकर बोलीं, "तेरे को नईं पत्ता? मिली नईं तेरे को वो?"

अनिष्ट की आशंका से उसका जी धड़का, "क्या हुआ माँ को? बोल अम्मा!"

"सीताबाई ने नया नौरा (दूल्हा) बनाया! वो तेरी मावसी का देवर होता न, नारायण शिन्दे...उसी के साथ...मेरे को लगता, आज उसका रात पाली होएगा, तेरे कू घरमेच मिलेगा।"

सुनकर वह जड़ हो उठा।

लक्ष्मी अम्मा उसकी बाँह पकड़कर झकझोरती हुई कुछ पूछ रही थीं उससे, पर उसे कुछ सुनाई नहीं दिया। वह एकाएक मुड़ा और पलटकर भीड़ को धकियाता हुआ तेज़ी से पुल उतरने लगा...

ताशमहल

गुसलखाने से तौलिया लपेटे हुए निकलते निशीथ को उसने कुछ झिझकते हुए रोक लिया, "सुनो!"

पायदान पर गीले पाँव रगड़ते हुए निशीथ ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"मेरा मतलब है..."

"तुम्हारा मतलब है, मैं आज छुट्टी ले लूँ?"

उसका परेशान चेहरा हिला।

"छुट्टी बकाया है?" व्यस्त भाव से उसने सिर के गीले बालों को दोनों हाथों की उँगलियों से झटकते हुए कदम बढ़ा दिए।

वह एकदम सामने आ गयी। तय करना ज़रूरी है। वह नहीं रुक सकती। आज से उसकी 'एजुकेशन फॉर वीमन्स इक्वलिटी' पर कार्यशाला शुरू हो रही है। तीस से पाँच तक चलेगी। तीन महीने से वह इसी कार्यशाला की योजना को कार्यान्वित कर पाने के लिए विभाग से लिखा-पढ़ी कर रही थी। बजट पास करवाया। सम्भावित विशेषज्ञों की सूची तैयार की। आमन्त्रण भिजवाए। हैदराबाद, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास...कहाँ-कहाँ से लोग आ चुके होंगे। वह नहीं पहुँचेगी तो किए-धरे पर पानी फिर जाएगा। वीमेन स्टडीज़ यूनिट की प्रमुख प्रो. डॉ. मिस कथूरिया एक अन्य कार्यशाला के सिलसिले में मिज़ोरम गई हुई हैं। आज शुरू हो रही कार्यशाला की पूरी ज़िम्मेदारी उसके कन्धों पर है। क्या पता था कि ऐन मौके पर बच्चू की बीमारी गम्भीर रूप धारण कर लेगी। और पिछले दो हफ्तों से चढ़-उतर रहा उसका बुखार वायरल नहीं, टाइफाइड सिद्ध होगा। सुबह थर्मामीटर लगाया तो बुखार एक सौ चार पाया। दूध देने पर सारा दूध पलक झपकते उसने नाक-मुँह से भलभलाकर उलट दिया। होंठ बजबजा आए। आँखें डूबने लगीं। उसका कलेजा मुँह को आ गया। दौड़कर डॉ. श्रीवास्तव का नम्बर मिलाया। वे अपने नर्सिंग होम के लिए निकल रहे थे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि बच्चे को वह अविलम्ब नर्सिंग होम में दाखिल करा दें। केस बिगड़ गया है। बच्चा रक्ताल्पता से पीड़ित तो है ही, हो सकता है ग्लूकोज़ आदि चढ़ाना पड़े। उसने कम्पित शब्दों में अपनी मजबूरी बयान की कि क्या शाम को कार्यशाला से लौटकर वह बच्चू को नर्सिंग होम में दाखिल नहीं करा सकती? 'नहीं' कहकर डॉक्टर श्रीवास्तव ने लाइन काट दी। दुबारा नम्बर

मिलाने और पूछने का साहस नहीं हुआ। डॉ. श्रीवास्तव की हड़बड़ाहट से स्पष्ट ज़ाहिर हो रहा था कि वे बेहद जल्दी में हैं और फोन रखते ही घर की सीढ़ियाँ उतर गाड़ी में बैठ गये होंगे।

"सब पैसा बनाने के चक्कर हैं...नर्सिंग होम में ले आइए।" टाँगें फैलाकर पैंट की ज़िप चढ़ाते हुए निशीथ ने घृणा से मुँह बिराया, "टाइफाइड है, कैंसर नहीं! मर नहीं जाएगा बच्चू। सुबह से घर को सिर पर उठा रखा है। ऊपर से ये डॉक्टर! जेबकतरे हैं साले, जेबकतरे!" टी-शर्ट का हैंगर बिस्तर पर फेंकते हुए वह बाँहें फँसाते हुए टी-शर्ट पहनने लगा, एकदम निर्लिप्त।

"दाखिल-वाखिल करने की मूर्खता छोड़ो। लंच के बाद घर आ जाओ, बस। तब तक अम्मा देख लेंगी उसे। बत्तरा मामूली डॉक्टर नहीं। उसकी दी हुई खुराकें तो पूरी होने दो!"

"तो तुम उसे नर्सिंग होम नहीं ले जा सकते?"

"एक तो मैं डॉ. श्रीवास्तव की सलाह उचित नहीं समझता और अगर तुम्हारी ज़िद ही हो तो गुंजाइश नहीं।"

इससे अधिक गिड़गिड़ाना उसके वश का नहीं।

समय भी नहीं है। मदर डेरी के बूथ के सामने से ठीक आठ-बीस पर उसकी चार्टर्ड बस छूट जाती है। उसके बाद साढ़े आठ की तीन सौ चवालीस स्पेशल निकलती है, जो ठीक रा. शै. अ. प्र. प. के गेट नं. दो पर खत्म होती है। गेट नं. दो से उसका कार्यालय यही कोई आधा फलाँग होगा। साढ़े आठ वाली बस भी छूट गई तो मुसीबत ही समझो। पहुँचने के लिए कोई सीधी बस नहीं है। मेडिकल पहुँचकर बस बदलो या फिर स्कूटर-टैक्सी का सहारा लो। व्यर्थ ही उसके आगे-पीछे मँडराती रही। स्वयं तैयार होना है। संग ले जानेवाले पूरे कागज़ात सहेजने हैं। आधे-घण्टे के अन्तराल में बच्चू को दो अन्य दवाइयाँ पिलायी जानी थीं, जिन्हें पिलाना ही भूल गयी। दूध उलटकर कैसा निष्प्राण हो आया है, हफ्तों से न सिंचे पौधे की भाँति!

किसी सहयोगी को फोन भी नहीं कर सकती कि ऐसी स्थिति में वे ही सुझाएँ कि वह क्या करे? निकल चुके होंगे घर से सब।

वैसे भी उद्घाटन में तो उसे हर हालत में होना ही चाहिए। श्रेय लपकने वाले प्रतिस्पर्धी कौन कम हैं कार्यालय में!

वैसे भी कार्यालय अब जुआखानों और जुगाड़खानों में तब्दील होते जा रहे हैं। खेल खेलने में माहिर ही वहाँ जमे रह सकते हैं। उन लोगों के सामने घर-बार की मजबूरी का होना उनके हाथ में फाँसा पकड़ना होगा।

"टाइफाइड है कैंसर नहीं, मर नहीं जायेगा बच्चू!" लगा था, किसी ने पहाड़ की चोटी पर चढ़ाकर अचानक पीठ पीछे से धक्का दे दिया हो।

निशीथ दिन-प्रतिदिन काठ क्यों होता जा रहा है? किसी सूखे तने-सा काठ! जिसकी छाती में खुदे कोटर में निवास करते पक्षियों सदृश वे। कोई सरोकार नहीं उन रहनेवालों के

संग उसका। क्या हुआ उनके दरमियान कि एकाएक निशीथ काठ होने लगा और वे कोटर के आश्रयी पक्षी। बदहवास हो घबराकर कितनी ज़ोर से चीखी थी। जब तक बच्चू को गोद में उठाकर पलंग की पाटी से उसे नीचे झुकाए तड़पकर उसने नाक और मुँह से भल-भलकर दूध नहीं, आँतें उगल दी थीं बिस्तर पर। कोई समय था, बच्चे पर बिगड़ने का? खटिया लगते बड़ों-बड़ों की हिम्मत पस्त हो जाती है। बिस्तर पर ही खाना-पाखाना होने लगता है। फिर वह तो चार फीट की नन्ही काया है। कहीं गाँव- जवार में होता तो अब तक कनिया लदा बछेड़-सा माँ के आँचल में मुँह मारता फिरता।

दवाई की दोनों खुराकें आँख भींचे पड़े शिथिल बच्चू के मुँह में एक साथ डाल दीं उसने। उबकाई शान्त है। दवाएँ उलटी नहीं उसने।

कलाई मोड़कर सूइयों पर निगाह डाली। मस्तिष्क को अचानक बिजली का-सा झटका लगा। चार्टर्ड गई। भले सीढ़ियाँ उतरते ही उसे रिक्शा खड़ा मिल जाए तब भी वह मदर डेयरी के बूथ तक समय से नहीं पहुँच सकती और बस नहीं पकड़ सकती। तीन सौ चवालीस स्पेशल का ही आसरा शेष है। कन्धे पर मूँगा कोटा के पल्लू की चुन्नटों को ब्लाउज़ के भीतर से पिन लगाते हुए वह हड़बड़ायी हुई-सी अम्मा जी के निकट जा खड़ी हुई। बोलते हुए चेहरा दयनीय हो आया। कुछ बोलना न भी हो तब भी दयनीयता उनकी उपस्थिति के साथ ही जाने क्यों चेहरे पर आ चिपकती है।

“आप कहें तो रोनू को क्रैच में छोड़ती हुई जाऊँ!”

“काहे?” अम्मा के माथे की साँवली झुर्रियाँ गहरी सलवटों में परिवर्तित हो चौड़ाती झड़ी माँग से जा जुड़ीं, “हम नहीं हैं घर में...?”

“दोनों को सँभालने में दिक्कत नहीं होगी आपको?”

“जरूर होगी...तुम बच्चू को नर्सिंग होम में दाखिल नहीं कराय रहीं?”

उनका आशय तमाचे-सा लगा गाल पर।

“छुट्टी नहीं ले सकती...” उसे लगा, आगे शब्द नहीं, अचानक रुआँस झड़ पड़ेगी होठों से। बीच-बीच में छुट्टी लेती रही। ले सकती थी, नहीं ले पा रही तो कोई बच्चू की ज़िम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं। दो हफ्ते से बिस्तर पर पड़ा है बच्चा, किसी रोज़ दिक्कत हुई क्या? कोई तकलीफ दी उन्हें बच्चू ने? उठ पाता है तो अपने-आप निर्देशानुसार दवा खा लेता है। दूध ले लेता है। बच्चू से लगाव नहीं है, न सही। लेकिन सामान्य दया-माया पाने का भी अधिकारी नहीं है वह? सुबह से मात्र मूकदर्शक की भाँति बैठी देख रही है, बच्चू की बिगड़ती हालत। न खुद पूछा-पाछी की, न निशीथ को ही टोका कि एक दिन दफ्तर न जाने से पहाड़ नहीं टूट पड़ेगा सिर पर। कैजुअल पूरी-की-पूरी बकाया है उसकी, अच्छी तरह जानती है। घड़ी की सूइयाँ दौड़ रही हैं। उनके मुँह लगना ठीक नहीं। सुबह से झायँ-झायँ हो रही है। पता नहीं, कार्यशाला में क्या कर पाएगी।

बच्चू के सिरहाने रखी मेज़ पर से दवाइयों की दो पुड़िया बना लाई और अम्मा जी के सामने खोलकर समझाने लगी, “सुबह की दवा पिला दी। ग्यारह के आस-पास यह पीली

गोली और हरा-सफेद कैप्सूल दे दीजियेगा, पानी के साथ। दोपहर में ये तीनों सफेद। उलटी की शिकायत करे तो ये छोटी सफेद।"

उल्टी की बात सुनते ही अम्मा के चेहरे पर घिन कौंधी। रोनू दाँत निकाल रहा है। दस्त भी लग जाते हैं उसे, और दूध भी उलट देता है अक्सर। उसकी उल्टी-टट्टी साफ करते अम्मा के चेहरे पर रत्ती-भर भी घिन नहीं झलकती। चिन्ता टपकती रहती है प्रतिपल। हरड़-बहेरा चटाने से लेकर राई-नोन उतार टोना-टटका फूँकती रहती हैं उस पर। जिस दिन रोनू के जन्म लेने की सूचना पहुँची उनके पास, कभी उनकी देहरी पर पाँव न धरने की उनकी कसम अचानक टूट गई। रोनू को छाती से चिपकाए उस पर बलिहारी होती रहतीं वे। आने-जाने वाले सम्बन्धियों के समक्ष खिसियाती, बड़बड़ाती रहतीं कि मूल से ब्याज प्यारा होता है। कैसे हठ धरे बैठी रहतीं? उसके साथ निशीथ के ब्याह के निर्णय को अम्मा पचा नहीं पाई थीं। कसम खा ली थी उन्होंने कि वैधव्य के शेष दिन वे आगरे जाकर अपने राधास्वामी सत्संगियों के बीच काट देंगी। तीन साल से अम्मा वहीं थीं। जब से आयी हैं, रोनू को क्रैच में नहीं छोड़ने देतीं। बड़े मनोयोग से सुबह-शाम कड़वे तेल से उसकी मालिश करती हैं। चिरौंजी का उबटन मलती हैं। मैल की बत्तियाँ दिखाकर निशीथ को उसकी लापरवाही का उलाहना देती हैं, "ऐसे पलते हैं बच्चे! दूध के दाँत निकले नहीं और डिब्बे का दूध! छाती सुखाने की क्या जरूरत थी? ऐसी कौन-सी कलेक्टरी चली जाती अगर नौकरी छोड़ देती बहू?"

"बच्चू का दलिया बना दिया है।"

उसने अम्मा को देखे बगैर उन्हें सम्बोधित किया।

कन्धे पर बैग डालकर गोद में फाइलों का पुलिन्दा सहेजती हुई वह बच्चू के ऊपर झुकी, "दादी को दिक् नहीं करना! बिस्किट, पानी—सब रखा है तुम्हारी मेज़ पर।"

कठिनाई से आँखें खोलते हुए बच्चू ने निष्प्रभ दृष्टि से उसे देखकर अनुमोदन में ठुड्डी हिलाई।

वह तेजी से कमरे से निकलकर दालान पार करती हुई घर से बाहर हो गयी। रोनू को प्यार करना भूल ही गयी। अम्मा को बच्चू की दवाइयों की खुराक समझाने गई तो कैसे उसकी ओर टूटकर कूद पड़ रहा था उनकी गोद से। अच्छा है, काजल नहीं आँजती आँखों में।

बस के पायदान पर पाँव रखते ही बस रेंगने लगी।

जान में जान आई। बस छूटती देख रिक्शेवाले से अठन्नी वापस नहीं ले पायी। महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों के निकट पहुँचते ही एक सीट पर बैठी दो महिलाओं ने उसके टिकने के लिए जगह बनाई। कृतज्ञता ज्ञापित करती वह सीट पर बैठ गई। फाइलों का ढेर खिड़की से सटी बैठी हुई महिला ने अपनी गोद में रख लिया।

पहले ठीक नहीं थी! अकेली? अकेली कहाँ, बच्चू था साथ।

सुकुमारी काकी थीं, जो कार्यालय से उसके घर में पाँव देते ही अपना झोला लटका, घर और बच्चू की ज़िम्मेदारी उसके हवाले कर अपने घर चल देतीं। अनुशासित दिनचर्या, कोई बाधा-व्यवधान नहीं। कभी सुकुमारी काकी की रीढ़ की हड्डी की टीसें उन्हें खटिया से लगने को मजबूर कर देतीं तो वह और बच्चू आपस में ज़िम्मेदारी बाँट, एक मौन समझौते के तहत जीने लगते। बच्चू पड़ोस की सुलभा आण्टी से चाभी लेकर ताला खोलता। मेज़ पर रखा खाना खाता। खाने के बाद सुलभा आण्टी से बाहर ताला डलवा चाभी अपने पास रखने को कहकर सो जाता। कई दफे तो वह उसके कार्यालय से लौटकर आने तक सोता ही रहता। किन्तु अक्सर बच्चू उसके घर पहुँचने से पूर्व उठकर अपना गृहकार्य निपटाकर कमरे की खिड़की पर बैठा उसके आने की प्रतीक्षा करता मिलता। उसे देखते ही खिड़की से दरवाज़े पर आ, हर्षित हो कूदने लगता, "ममा आ गई। आ गई। आ गई।" किवाड़ खोलते ही उचककर वह उसके गले में झूल जाता और पाँव उचकाए हुए ही बिस्तर तक लटका चला आता। उन दोनों के बीच दूर-दूर तक कोई नहीं था।

निशीथ से उसने स्पष्ट कहा था कि वह अपने और बच्चू के बीच किसी अन्य की गुंजाइश कतई नहीं पाती। उसके सामने एक संकल्प है। उद्देश्य है। सार्थकता भी। देह की माँग इन सबके बीच स्वतः खो गयी है। उठती ही नहीं।

"यह साधना है...स्वाभाविक माँग से काटकर।"

"गलत...न साधने की आवश्यकता रह गई है, न काटने का प्रयत्न...देह अपनी सीमाओं के प्रति समझदार नहीं साझीदार भी है..."

"मैं इसे दमन करूँगा..."

"तुम मुझे जीने की परिभाषा नहीं दे सकते..."

"यह तुम्हारी ज़्यादती है...तुम मेरी ओर देखना नहीं चाहतीं..."

"मेरे लिए इन बातों का अब कोई महत्त्व नहीं रहा..."

'यह' उसके सामने निशीथ ने एक छोटी-सी काली डायरी हौले-से सरका दी थी।

"क्या है, यह?"

"खुद ही देख लो।"

"मगर क्यूँ?"

"मुझे जानने के लिए..."

"तुम्हें जानती नहीं...?"

"वह मैं नहीं हूँ...।"

"अगर तुम वह नहीं हो तो तुम्हारे कुछ और होने को जानना मेरे लिए आवश्यक नहीं..."

"शायद...लेकिन मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे कुछ और होने को भी जानो शुभू।"

"किसी की डायरी पढ़ना अपराध है, निशीथ।"

"तब नहीं, जब कोई स्वयं उसे पढ़वाना चाहे।"

उसके भीतर गाढ़ा होता असमंजस मेज़ पर रखी कॉफी के प्याले की सतह पर साढ़ी-सा जमने लगा। झट से साढ़ी हटाकर उसने कॉफी का घूँट भरना चाहा। भर नहीं सकी। दस-पन्द्रह मिनट पूर्व आई कॉफी का स्वाद ऐसा लग रहा है, जैसे पिछले दिन कोई कॉफी बनाकर अपना प्याला पीना भूल गया हो और वही प्याला किसी ने फिर उसके सामने लाकर रख दिया हो। झुटपुटा उसके भीतर उतरने लगा। उठना चाहिए। इण्डिया इण्टरनेशनल सेण्टर के सामने से स्कूटर नहीं मिलता। खान मार्किट तक पैदल जाना होगा। बच्चू चिन्तित हो रहा होगा कि घण्टे-डेढ़ घण्टे देरी से पहुँचने की खबर करके ममा अब तक घर क्यों नहीं पहुँचीं।

"उठें...?"

अपने में डूबे निशीथ ने चौंककर उसकी ओर देखा, "एक-एक कॉफी और पीयें...?"

वह उठ दी, "पहली ही नहीं पी सकी..."

"क्यों...ठीक नहीं?"

"इच्छा नहीं हो रही।" वह उठते ही कुर्सी खिसकाकर मुड़ ली। उसकी पीठ ने महसूस किया, मेज़ पर से डायरी उठाते हुए निशीथ ने याचना भरी दृष्टि से उसे देखा। फिर खामोशी से पीछे हो लिया।

गेट से निकलते ही संयोग से एक खाली स्कूटर सामने से आता हुआ दिखाई दिया। रोका उसे। किराया उसने डेढ़ गुना माँगा। इस वक्त कोई झिकझिक सम्भव नहीं थी। भीतर पाँव रखते हुए उसने चेहरे पर स्थायी हो आई अलिप्तता को तनिक झटकने की कोशिश की। इतना आशालीन होना उचित नहीं। "कॉफी के लिए धन्यवाद! निशीथ।"

निशीथ के उदास चेहरे पर सघन होती सन्ध्या की कालिख गहरा आई, "मैं अब भी डायरी पढ़वाना चाहता हूँ..."

वह कहना चाहती थी, इसके लिए तुम मुझे क्षमा कर देना निशीथ! लेकिन उसके डायरी लिये तेज़ी से आगे बढ़ आए हाथ की किलकन उससे दुरियाई नहीं गई।

रात बिस्तर पर डायरी के पृष्ठ करवटें भरने लगे...

"दिवाकर को चुनकर तुमने मेरे सामने एक फैसला रख दिया था और अपनी भावनाओं को अप्रकट रहने देकर मैंने उसे अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लिया था। अब दिवाकर तुम्हारे जीवन से अलग हो चुका है...मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि तुम्हारे इर्द-गिर्द बने रहने का बरसों पुराना सन्तोष अब अचानक अपनी नियति से विद्रोह करने लगा है..."

"व्यक्ति व्यक्ति से अलग होता है...मैं तुम्हें अब भी...तुम्हारे लिए सही मायनों में साथी

होना चाहता हूँ, शुभू! बच्चू के लिए सचमुच पिता। तुम पाओगी, मैं जो कुछ कह रहा हूँ, मात्र मेरा सोचना-भर ही नहीं है, न कोरी भावुकता की उड़ान। यह जीवन के हर पक्ष में भागीदारी का ऐलान है...बच्चू तुम्हारे प्राणों का स्पन्दन ही नहीं है, वह मेरे हृदय में भी संचरित हो रहा है...”

डायरी के पृष्ठों ने उसे उद्वेलित कर दिया। महीनों वे पृष्ठ किसी के हाथ में बन्धक कबूतर से इर्द-गिर्द फड़फड़ाते रहे...पीड़ा के खाँचे नहीं होते!

“मेरी एक शर्त है...” वे इण्डिया इण्टरनेशनल सेण्टर के उसी पिछवाड़े वाले लॉन में बैठे हुए थे। “मुझे मंजूर होगी...”

“बच्चू के अलावा मैं कोई दूसरा बच्चा नहीं चाहूँगी...”

निशीथ को निर्णय करने में पल-भर भी नहीं लगा, “मंजूर...लेकिन क्यों?”

“विभाजित माँ डायन होती है...”

असावधानीवश रोनू रह गया। वह निश्चिन्त थी कि गर्भपात करवा लेगी। निशीथ ने पहले तो ‘हाँ’ कर दी मगर डॉ. कोटवानी से गर्भपात की तारीख निश्चित करने के समय एकाएक उसका हृदय डावाँडोल होने लगा। उससे रहा नहीं गया। डॉ. कोटवानी के सामने ही वह उससे ज़िद करने लगा कि वह अपने निर्णय पर एक बार फिर से सोच ले। गर्भ रह ही गया है तो बच्चा होने देने में हर्ज ही क्या है? अपनी ज़िद के पक्ष में उसका तर्क था, “क्या हम अपनी मान्यताओं को बच्चू के ऊपर ज़बरन थोपकर बच्चू के संग ज़्यादती नहीं कर रहे? बड़े होकर उसे अकेलापन अनुभव हो सकता है। बड़े होकर क्या, अभी नहीं लगता होगा? एक और बच्चे के आ जाने से बच्चू कितना खुश होगा? और अगर कहीं बहन आ जाए तो इस घर में लड़की की कमी भी पूरी हो जायेगी...”

“...वह शर्त और कुछ नहीं, तुम्हारे हृदय में पंजे गड़ाए बैठी असुरक्षा की वह भावना थी, जो तुम्हें आशंकित किए हुए है कि कहीं ऐसा न हो कि हमारा वात्सल्य बँट जाए। तुम्हें बच्चू के प्रति मेरे व्यवहार में कोई अन्तर दिखाई दे रहा है? स्नेह में कोई खोट महसूस हो रही है?”

उसे लगा, बच्चू के बहाने स्वयं निशीथ के मन में बच्चे की ललक ठाठें मार रही है। वह पिता होना चाहता है। उसके पिता होने के अधिकार को वह अपनी अमानवीय शर्त के पाँवों तले कुचलकर उसके प्रति निर्दयी नहीं हो रही? सम्भव है, स्वयं पिता बनकर निशीथ बच्चू के लिए अधिक संवेदनशील और उदार पिता साबित हो। शायद आने वाला बच्चा उन तीनों को अधिक सुदृढ़ता से जोड़नेवाला सेतु सिद्ध हो। गर्भपात कराने का निश्चय उसने बदल दिया।

कुर्सी पर अधलेटी-सी हो उसने आँखें ढाँप लीं।

कैसा दड़बे-सा कमरा है उसका। बिजली जाते ही अँधेरी सुरंग-सी हो उठती हैं, कमरे के ऊपर ढही पड़ती-सी दीवारें। कितनी लिखा-पढ़ा की है अधिकारियों से उसने कि काम-

काज के लिए उसे कोई अन्य जगह दे दी जाए। कोई भी। भले ही वह वातानुकूलित न हो मगर उसके सीने पर आसमान की ओर खुलती कुछेक खिड़कियाँ अवश्य हों, जिनसे टिककर वह ताज़ी हवा के झोंकों के साथ अपने होने को अपने भीतर महसूस कर सके। घर और कार्यालय—दोनों ही जगह वह अपने होने को महसूस करने के लिए निरन्तर छटपटाती रहती है। घर में खिड़कियाँ बहुत हैं, मगर वे खुली होने के बावजूद उसे उसके होने की अनुभूति से नहीं पूरतीं। उसे लगता है कि वे खिड़कियाँ, खिड़कियाँ नहीं रह गई हैं—दीवारों का हिस्सा बन गई हैं जिनके पट ज़ंग खाई सिटकनी के चलते कभी न खुल पाने के लिए अभिशप्त हैं...

"अन्दर आ जाऊँ साहब...?"

चौंककर वह सीधी हो आई। प्रकाशन विभाग के गुप्ता जी थे, "लगता है, मैंने आराम में खलल डाल दी।"

"आराम!"

"तो कुछ सोच रही थीं...?"

"बैठिए...बैठिए..." उसने उनके प्रश्न का कोई उत्तर न देते हुए कुर्सी की ओर इशारा किया।

"ऐसा है शोभना जी, मैं आपकी परेशानी समझ रहा हूँ। जिन लोगों को स्थानान्तरित किया जाना चाहिए, वे इत्मीनान से कुर्सी से चिपके बैठे हुए हैं। किसी एम.पी. या मन्त्री से परिचय-वरिचय नहीं आपका?"

उसने प्रश्न-भरी दृष्टि से गुप्ता जी की ओर देखा।

"ये निदेशक साहब हैं ठेठ धुर्र। करती रहिए लिखा-पढ़ी। देती रहिए ये कारण, वे कारण। रोती-बिसूरती रहिए अपनी कठिनाई। हथेली पर सरसों नहीं जमेगी। आपको शिमला जाना ही पड़ेगा बतौर फील्ड एडवाइज़र...रीडर हैं तो क्या हुआ, जहाँ-तहाँ पटक सकते हैं वे आपको...बस, एक ही पेपरवेट है जो आपके तबादले को कल का कल, बल्कि यों कहूँ तो अभी इसी क्षण रद्द करवा सकता है...मन्त्री जी का एक फोन पहुँच जाए इस धुर्र के पास, फिर देखिए तमाशा... कलाबाजी खाता नज़र आएगा आपके इर्द-गिर्द। अंगद के पाँव की तरह दिल्ली में जम जाइएगा आप साहब।"

"यही तो मुश्किल है..." उसके चेहरे पर हताशा अहेरी के जाल-सी फैल गई।

"अरे मुश्किल-उश्किल कुछ नहीं...निशीथ जी से कहिए कोई सोर्स भिड़ाएँ... दिल्ली में रहिएगा और बिना किसी एम.पी., मन्त्री की किरपा से।"

उसके होठों पर कलछाया विद्रूप खिंच आया। जल्दी में नहीं लगे गुप्ता जी, चाय मँगवानी ही पड़ी उसे। चाय सुड़कते हुए गुप्ता जी उसके विभाग के प्रत्येक अधिकारी की जन्मपत्री सस्वर बाँचते रहे। सुनते हुए भी वह सुन नहीं रही थी। उनके जाते ही उसने निदेशक के नाम अपने तबादले के सन्दर्भ में तीसरा कड़ा विरोध पत्र लिखा और पी.ए. नौटियाल को बुलाकर उसे तत्काल टंकित कर लाने को कहा। फिर अपने द्वारा पिछले वर्ष

स्कूल शिक्षकों के लिए संयोजित की गई एक विशिष्ट पुस्तक की टंकित प्रति सामने खींचकर पढ़ने की कोशिश करने लगी।

निशीथ से कुछ कह सकती है...? पिछले हफ्ते से उन दोनों के मध्य परस्पर बोलचाल एकदम बन्द है। पहले उनकी कोशिश हुआ करती थी कि जब तक अम्मा उनके साथ हैं, किसी भी प्रकार की बदमज़गी से वे बचें। लेकिन अब उसकी पूरी सतर्कता और संकोच के बावजूद स्थिति ठीक उलटी हो रही है। निशीथ के दिमाग में कुछ जाले पैदा हो गए हैं। वह अपनी समस्त चेतना और विवेक को ताक पर रखकर उन जालों में कैद हो गया है और उसे भी उन जालों की बदबूदार सड़न में घसीटकर अपने हाथों अपनी नाक-मुँह बन्द कर घुट जाने को विवश कर रहा है...बन्द कर ले अपनी नाक-मुँह...?

...सोने की तैयारी में वह पलंग पर अधलेटी हो पत्रिका पलट रही थी। निशीथ ब्रुश करने गया हुआ था। अचानक पसीने से लथपथ काँपता हुआ बच्चू अपने कमरे से आकर लिपट गया और हिचकी ले-लेकर सुबकने लगा। समझ गई, वह नींद में डर गया है। पुचकारने पर उसने बताया कि सपने में उसने एक विशाल डरावने दैत्य को देखा जो अपनी लपलपाती जीभ लिये उसे निगलने को उसकी ओर बढ़ रहा था। उसने बच्चू को प्यार करके उसके कोमल हृदय से भय भगाने की चेष्टा की। समझाया-बुझाया कि डरना कायरता है, वह तो बहुत बहादुर बच्चा है। जाए, और अपने कमरे की बत्ती जलाकर सो जाए। मगर बच्चू अपने कमरे में अकेले जाकर सोने के लिए तैयार नहीं हुआ। ज़िद ठान बैठा कि या तो वह चलकर उसके पास सोए या फिर उसे अपने पास सुलाए। भयभीत बच्चू किसी आघात से पुनः बीमार न पड़ जाए, यह सोचकर उसने उसे छाती से चिपका लिया और उसे सुलाने की कोशिश करने लगी। पता नहीं कब बच्चू सो गया और उसे भी झपकी लग गई। अचानक उसे महसूस हुआ कि किसी ने झटके से बच्चू को उसके अंक से दबोच लिया है। जब तक वह कुछ समझे-बूझे, बच्चू की दिल दहला देनेवाली चीत्कार को सुनकर बदहवास-सी उठ बैठी। कमरे के अन्दर का दृश्य देख दिल दहल गया। अशक्त बच्चू को शक्तिभर ऊँचे उठा निशीथ ने निर्दयतापूर्वक पलंग पर पटक दिया था...

वह अपने पर नियन्त्रण खोकर पगला-सी उठी। "क्यूँ प्राण लेना चाहते हो तुम, इस अबोध बच्चे के? क्या बिगाड़ा है इसने तुम्हारा? बोलो, क्या बिगाड़ा है इसने तुम्हारा?"

"यह मेरी आँखों में प्रति क्षण किरच-सा करकता रहता है..."

"मगर क्यूँ?"

"न पूछो तो बेहतर है..."

"सब्र की एक सीमा होती है..."

"होती है, निश्चित। और मेरे भीतर भी अब वह चुक गई है...बच्चू मात्र दिवाकर का अंश ही नहीं, उसकी शक्ल में तुम प्रतिपल अपने भीतर दिवाकर को ही जी रही हो। दिवाकर तुम्हारे लिए अतीत नहीं अब भी वर्तमान है, वर्तमान... वह तुम्हारे जीवन से निकलकर आज भी नहीं निकल पाया..."

"यह सब तुम्हारे संशयी दिमाग के जाले हैं जिन्हें तुम मुझ पर उगल रहे हो..."

"जाले नहीं सच्चाई है, कड़वी सच्चाई। बच्चू को जब भी मैं तुम्हारी छाती में सिर गड़ाए दुबका हुआ पाता हूँ, मुझे वह दिवाकर नज़र आता है..."

"क्या बकते हो..."

"इस घर में, अपने और तुम्हारे बीच इसे मैं और नहीं बर्दाश्त कर सकता... मुझे ही नहीं, इस टूटरूँ-टूँ दिवाकर के पीछे तुम मेरे बच्चे की भी उपेक्षा कर रही हो... लगता है, रोनू को पैदा ही नहीं किया तुमने...क्यों कर रही हो सौतेला व्यवहार मेरे बच्चे के संग?" 'मेरे' पर निशीथ ने जिस भाव से ज़ोर दिया, उसके भीतर भरे मर्तबान-सा गिरकर कुछ टूट गया। यह उनके दरमियान मेरे-तेरे की विभाजन रेखा कब आ बैठी दबे पाँव!

"क्या कह रहे हो, अनर्गल ओछा...समझते हो?" घृणा से उसकी आवाज़ काँप उठी, "मैं माँ हूँ...बच्चू और रोनू में अन्तर कर सकती हूँ?"

"खूब...पता नहीं क्यों तुम पर मैंने रोनू के जन्म के लिए दबाव डाला। क्यों ज़िद की पिता बनने की...तुम तो दुबारा माँ बनना ही नहीं चाहती थीं। रोनू मरे या जिये, तुम्हें इससे मतलब नहीं, उठाया गोद में और पटक आई क्रैच में...जो कुछ करना है, अम्मा करें..."

बिस्तर पर सहमा बच्चू घुटनों में मुँह छिपाये बैठा हुआ था। अम्मा भी उठकर कमरे के दरवाज़े पर आ खड़ी हुई थीं। उसने शान्त होने और शान्ति बनाए रखने की मंशा से स्वर को भरसक संयत बनाया, "ऐसा नहीं हो सकता कि तुम अपने मन में बैठे आधारहीन संशयों को उखाड़ फेंको और बच्चू को उसी रूप में प्यार करो जैसे पहले करते थे? तुमने स्वयं दिवाकर बनना चाहा था उसके लिए पिता बनकर।"

"तुमने बनने नहीं दिया..."

"यह सच नहीं है..."

"सत्य क्या है?"

"सत्य इतना-भर है कि इस घर में रोनू के लिए दादी है, पिता है, माँ है, किन्तु बच्चू के लिए...सिर्फ उसकी माँ-भर है। इस घर में ही क्या, सम्भवतः पूरे संसार में, और मैं उससे उसकी माँ छीनने का अपराध नहीं कर सकती..."

"ये तुम्हारे मन के भ्रम हैं...लेकिन अब भी ये घर, घर हो सकता है एक शर्त पर। बच्चू को हॉस्टल में डालना होगा...मैंने पंचगनी स्थित रानाडे विद्यालय का फॉर्म आदि मँगवा लिया है...सोच लो तुम।" वह पाँव पटकता हुआ अपने कमरे की ओर चला गया था। अम्मा जैसे मौन खड़ी थीं, मौन ही पलट पड़ी थीं। उस कमरे में रह गए थे—सिर्फ वह और घुटनों में मुँह दिये उकड़ूँ बैठा बच्चू!

...कितना कुछ कहना चाहती थी। कहना चाहती थी, जो व्यक्ति मेरे जीवन से निकल चुका है, उसे तुम इस अबोध बच्चे में खोज रहे हो। यह दिवाकर का अंश ज़रूर है निशीथ, किन्तु यह मेरा भी तो अंश है। तुम मुझे क्यों नहीं खोज सके बच्चू में और उसे क्यों नहीं

अपना सके? क्या था वह, जो तुम अपनी डायरी के पृष्ठों में दर्ज करते रहे...? दिवाकर से जुड़ जाने के बावजूद जो तुम्हारे हृदय में उतनी ही तीव्रता से प्रज्वलित होता रहा और बरसों के अन्तराल के बावजूद, शमित नहीं हो पाया। कहना यह भी चाहती थी निशीथ से, कि तुमने तो कहा था कि तुमने ब्याह इसलिए नहीं किया था कि तुम अपनी शुभू के अलावा किसी और से शादी कर ही नहीं सकते थे।...

"अन्दर आ सकता हूँ मैडम?" नौटियाल निदेशक के नाम लिखाया गया उसका पत्र टंकित करके ले आया था।

"आओ।"

"यह पत्र...हाथ से ही भिजवाएँगी बड़े साहब के पास या डाक से...?" नौटियाल ने पत्र की टंकित प्रति उसकी ओर बढ़ाते हुए पूछा।

"बैठो...अब यह पत्र नहीं जाएगा।"

नौटियाल ने चकित भाव से उसकी ओर देखा।

"हाँ, दूसरे पत्र का डिक्टेशन ले लो।"

"यह ठीक नहीं?"

"नहीं, यह बात नहीं...यह तबादले के प्रतिवाद में है नौटियाल...और अब मैं तबादले पर जाने के लिए तैयार हूँ..."

कागज़-कलम सँभालते हुए नौटियाल ने अचरज से मैडम की ओर देखा। यह मैडम क्या कह रही हैं...

सौदा

किवाड़ों की सिटकनी उतारी नहीं कि पीछे पड़ते दबाव के चलते 'भड़ाक' से पट मुँह को लगते-लगते बचे। चन्दू की जगह एक नाटी-सी स्त्री-आकृति लपकती-सी भीतर घुस आई। वह भौंचक!

भौंचक्काहट झटके और कुछ सोचे-समझे कि आकृति ने फुर्ती से पलटकर किवाड़ भेड़ सिटकनी चढ़ाई और भयभीत हिरनी-सी पटों से पीठ टेक कुछ बोलने की असफल चेष्टा करने लगी। धोती की कसावट से मुक्त हुआ चेहरा एक किशोरी का था! फूटते कल्लों का-सा उभार लिये उसकी लगभग सपाट छाती, कोसों दौड़ाई के बाद सहिताने को किसी वृक्ष के तने से टिकी-सी दम साधने के प्रयास में साधे नहीं सध रही थी। स्मृति में न अड़ोस-पड़ोस का परिचय कौंधा, न गली-मोहल्ले, न दूर-दराज़, किसी सगे-सम्बन्धी का...फिर...?

उसकी दृष्टि में बटुर आए भय और सन्देह ने किशोरी की बदहवासी को चिकोटी भरी, "हमार रच्छा...गुंडे हमरे पीछे हैं...बचाय लो...!" सूखी, सहमी आँखों के कोरों के तट पर एक नन्ही-सी काँपती लहरी उमड़ी और उसे भिगोने को-सी अरराती बढ़ आई। विनती में जुड़ी कलाइयों की खरोंचों पर पपड़िया रहे रक्त-कण उसके संग हुई जबरई की चुगली खा रहे थे।

कनपटियों से साँय-साँय बहता तनाव भौंहों के बल रेंगता नाक के इर्द-गिर्द टपकने लगा। मवाली पीछे लगे हैं तो उसकी खोली तक खोजते हुए पहुँच सकते हैं। बच्चों के संग वह घर पर अकेली है। रात के डेढ़-दो से ऊपर हो रहे होंगे। चन्दू भी अब तक घर नहीं लौटा। ऐसे में अनजान छोकरी को घर में घुसाकर वह अपने लिए आफत नहीं न्यौत रही? महीने में बीस-पच्चीस दिन बच्चों के संग अकेले काटना होता है। कोई संकट खड़ा हो जाए तो किसका मुँह जोहेगी? बस्ती-बस्ती का फर्क ऊपर से। झोंपड़-पट्टी में थी तो मामूली-सी 'चीं-चाँ' पर भी लोग फूट पड़ते थे। चाल में अपनी-अपनी खोली, खोली में बन्द अपने-अपने दुःख-सुख!

उसकी मौन दुविधा ने किशोरी को आतंकित कर दिया। कहीं गृहस्वामिनी उसे घर से निकालकर बाहर मँडराते चील-कौवों को न परोस दे! फूटती हिचकियों को बरबस सुआए होठों में भींचने की असफल कोशिश करती हुई वह विगलित-सी उसके पैरों में देहरी हो आई, "बड़ी मुश्किल से पिरान बचाय के भागे हैं...इज्जत बचाय लो हमारी... हमरी माई समान

हो...तोहार उपकार जिनगी-भर न बिसरब...”

दारुण रुदन द्रवित कर गया। पाँव पर झुकी छोकरी की जूड़ी चढ़ी-सी काँपती पीठ उसके इर्द-गिर्द बेड़ियाँ बुनने लगी। किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठी। कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी उसकी विवेक-बुद्धि कुन्द नहीं हुई। इस क्षण कुछ सूझ नहीं रहा। कदम आगे बढ़ाए या पीछे! हो सकता है, छोकरी भली हो, सच्ची हो, परिस्थितिवश मुसीबत में फँस गई हो। कुछ भी हो, है असहाय। जवानी के तने पर पंजे कसती देह! चन्दू किसी भी क्षण गोदाम से घर लौट सकता है। उसे समझा लेगी। रात-भर के आसरे की बात है, सुबह सही-सलामत उसके ठिकाने पर चन्दू ही पहुँचा देगा। चन्दू की नींद सुबह न भी टूटी तो बच्चों को स्कूल रवाना कर, वह खुद ही उसे लेकर चल देगी। मुसीबत किसी को बताकर तो नहीं टूटती! यही ठीक होगा। चन्दू के आने तक उसे बच्चों के संग लिहाफ में दुबकी रहने को कहेगी। सन्देह में मवालियों ने दरवाज़ा ठोंका-पीटा भी तो यही दर्शाएगी कि वह गहरी नींद में सो रही है। अधिक उत्पात मचाएँगे तो चीख-चीखकर मोहल्ला जगा लेगी...

“उठ!” उसने झुककर छोकरी को पैरों से अलग किया, “नाम क्या है तेरा?” कान गली से उठनेवाली किसी भी आहट के प्रति चौकन्ने हो उठे।

“गेंदा...”

नाक-आँख का पानी हथेलियों से पोंछते हुए उसके सकुचाते हुए होठों पर उँगली रखते हुए उसने गेंदा को चेतावनी-सी दी, “शीऽऽऽ रोने का नईं... आवाज बाहर जाती... बोल, रैती किदर तू?”

उसके सवाल ने गेंदा को साँसत में डाल दिया।

“पता-ठिकाना होएगा न किदर का!” गेंदा की दुविधा भाँपते हुए उसने उसके संकोच को तोड़ना चाहा—“झगड़ा-बिगड़ा करके भागी होएगी घर से तो पन घबराना नईं।”

“दीनागंज...जिला गोरखपुर।”

“क्या? तुम इदर की नहीं?”

गेंदा ने अस्वीकार में धीरे-से सिर हिला दिया।

“तो तू इधर कैसे आयी?” उसे घेर किसी पहेली का फन्दा कस गया। साँस ऊपर की ऊपर, नीचे की नीचे। गेंदा की गरदन धड़ पर झुक गई निर्जीव-सी।

उसका धैर्य बिलबिला उठा—“बोलेगी नईं तो कैसे चलेगा?”

गरदन नहीं उठी, लेकिन साहस जुटाते शब्द स्वर पाने को तत्पर हो आए—“सूखा के चलते न गोड़ाई, न बुवाई...काम माँगने सोहनवा के होटल गये...उहाँ एक डिरेवर से भेंट भई। बोला, हमरे संग सहर चल, अपने सेठ के घर नौकर रखवाय देंगे। पाँच सौ रुपिया तनखाह मिली। रहना-खाना घर ही पर, अपने लिए क्या बचा-बुचू के माई को मनीऑडर करवाती रहना...हमहु सोचे, पैसा पाय के माई की रिस जाती रहेगी...पचास रुपिया दिया। बोला, अपने संग हम ठेला में लिवाय चलेंगे...सो हम...”

सब्र बँधा। सेठ के घर में काम छोड़कर भागी होगी। बड़े घरों में वह भी खटी है। पगार अपनी जगह है, मगर नौकर को वे आदमी नहीं, जानवर समझते हैं, जानवर! बूँद-बूँद निचोड़ते नहीं झिझकते। सहन नहीं हुआ होगा इससे—"काम की कमी नईं, पन दूसरा घर पकड़ के सेठ का घर छोड़ना था न! अऊर ऐसा रात में भागना!"

उसकी सहानुभूति पा, गेंदा के भीतर पसरा अँधेरा चरमराया। उठती दृष्टि के साथ लसाए दाँतों से चिपके होंठ 'पच्च' से तनिक खुलकर बुदबुद हुए। लगा, जैसे खुलती हिम्मत के बावजूद झिझक की कोई पैनी कील ठीक जुबान के बीचोंबीच आ धँसी हो और महसूस हो रहा हो कि किसी के आग्रह पर बीती सच्चाई के फिर गुज़रना ठीक किसी की धौंस की दहशतवश अपने ही हाथों अपने कपड़ों के बटन खोलने जैसा त्रासदायी है...क्षोभ से मन फिर उमड़ आया। अबकी जुबान की हरकत में आड़े आ रही कील उसने कोशिश कर उखाड़ फेंकी।

"सेठ की नौकरी फरेब थी, डिरेवर हमको धोखा दिया..." कील फिर गड़ने को हुई।

उसकी आँखों में अनायास लालटेन की बत्ती उकसा-सी आई, "बोल-बोल!"

"इहाँ लाके लालू दलाल के हाथ बिका दिया...चार हजार का सौदा पटा... लालू हमसे धन्धा करवाने को मार-कुटाई करने लगा...हम हाथ-गोड़ जोड़ते रहे—हमका छाँड़ि दे, हमसे नहीं होगा...आज सुबह बहुत जबरई किया, हम खिड़किया से कूदि के भागे..." गेंदा के धैर्य का बाँध टिका नहीं रह पाया।

वह अवाक् हो उठी।

धैर्य बँधाने के सारे रास्ते अवरुद्ध हो उठे। सत्य कहने के लिए जितना साहस जुटाना होता है, सुननेवाले के लिए भी सुनकर उसे झेल पाना उतना ही दुष्कर! बड़ी मुश्किल हुई अपने को समेटकर गेंदा को ढाँढ़स बँधाने में—"छिः-छिः, बहुत बुरा हुआ तेरे साथ..." अपना भी गला भर्राता हुआ हो आया—"जी छोटा मत कर, कोई-न-कोई रास्ता निकलेगा। रो मत इतनी जोर से...आवाज बाहर जाएगी।"

"चल, चलके बच्चों के पास सो जा गुपचुप। कोई भी आने दो, दरवाजा नईं खोलेगी मैं। मरद आएगा जो सऽऽब सँभल जाएगा।"

निश्चय से भरी वह गेंदा की बाँह पकड़, खोली के बाईं ओर दीवार से सटे पड़े पलंग के पास ले आई। गठरियों-से लुढ़के पड़े उसके तीनों बच्चे पलंग पर सो रहे थे। अचानक ठिठकती गेंदा की चीख सुनकर वह हतप्रभ हो उठी। पलटी तो पाया, पलंग के सामने वाली दीवार पर जड़ी फल्ली के ऊपर रखे चन्दू के बड़े-से चित्र के समक्ष ठिठकी हुई गेंदा पत्ते-सी काँप रही थी। अधीर हो उसने गेंदा को झकझोरा—"ऐसा काय कू घूरती फोटू को!"

गेंदा ने अजीब दृष्टि से देखा उसे। घिग्घी बँध आई क्षण-भर को—"डिरेवर ये... ये... यही है डिरेवर!" संकेत में उठी उसकी उँगली अचानक मरोड़ दी गई टहनी की भाँति पोर से झूल गयी।

"क्या बकती है तू?"

“ठीक कहते हैं...यही नीच है...इसी दहिजार ने हमका फुसला-बहलाकर यहाँ लाया है।”

“देख-देख...ध्यान से देख!” आवेश से भरकर उसने फल्ली पर से चित्र उतारकर गेंदा की आँखों के सम्मुख तान दिया।

“खूब पहचानते हैं इस पापी को, ठेला चलाता है...साथ का मनई चन्दू नाम से बुलाता है उसको...हमको कहाँ मालूम था ये मनई के भेष में भेड़हा है... ढेर लड़िकिन को बहिका-फुसला के उनका जीवन बरबाद किया है...”

अविश्वास और उत्तेजना से भरा उसका हृदय काँप उठा। गेंदा के स्वर की दृढ़ता चोट खाई नागिन की तरह फन काढ़े उसकी समूची चेतना पर फुफकार रही है...सिर घूम रहा है... सिर नहीं, शायद खोली ही रहट के चक्कर की भाँति तेज़ी से घूम रही है।

चन्दू का चित्र देख गेंदा किसी भ्रम का शिकार भी हो सकती है! लेकिन न नाम गलत बता रही है, न पेशा। गोरखपुर, बलिया, देवरिया वह माल ढुलाई-भराई के लिए अक्सर जाता है। भ्रम की गुंजाइश है ही कहाँ?

घुटनों में मुँह दिए, रह-रहकर सिसकी खींचती गेंदा की ओर दृष्टि घूमी, अभागिन नहीं जानती रही होगी प्राणों की रक्षा हेतु वह जिस घर के दरवाज़े आसरे के लिए खटखटा रही है, संयोग से उसी अहेरी का होगा, जिसने अपने जाल में फँसाकर उसकी बरबादी की नींव खोदी!

गेंदा को घर से हटाना होगा। हो सकता है, पीछा करते हुए मवालियों के संग चन्दू भी गेंदा की खोज में आकाश-पाताल एक कर रहा हो? न भी ढूँढ़ रहा हो, तब भी उसके लौटने का समय हो ही रहा है। किसी भी क्षण वह टपक सकता है। ऐसे में गेंदा सुरक्षित नहीं रह सकती। बच्चों के पास भी अब उसे सुलाकर नहीं छिपा सकती। नशे में धुत्त चन्दू घर में घुसते ही बच्चों के माथे पर हाथ फिराने से नहीं चूकता। चौकी न पहुँचा दे? ठीक मोहल्ले के नाके पर ही है। लेकिन गेंदा को साथ लेकर निकलना ऐसे नाजुक समय ओखली में सिर देना होगा। शिकारी कुत्तों-से सूँघते गुण्डे गली-गली उसे ढूँढ़ते फिर रहे होंगे। कुछ भी हो, अकेले चौकी पर जाने की हिम्मत वह किसी तरह नहीं सँजो पाएगी। पुलिसवालों के सलूक के विषय में इतना ऊल-जलूल सुन रखा है कि सोचकर ही झुरझुरी होती है। सुना तो है, चौकी पर अब औरत हवलदार और दरोगा भी होती हैं, लेकिन इतनी रात गये कोई ड्यूटी पर होगी कि नहीं, कौन जाने!

भँवर से उचक लेने को अचानक एक हथेली उसकी ओर कौंधी।

“घर में बइठ, मैं ताबड़तोड़ आई।” गेंदा के संदिग्ध चेहरे को उसने हाथ बढ़ाकर आश्वासित किया और लपककर फल्ली पर रखा हुआ ताला-चाबी उठा, खोली से बाहर हो गई।

बस, पटवर्धन ताई घर पर हों!

वैसे आज मंगल है। उन्हें घर पर ही होना चाहिए। जद्दन आपा बता रही थीं कि औरतों

के जमावड़े में शरीक होने ताई नागपुर गई हुई हैं। सोमवार की सुबह लौटने वाली हैं। 'दलित स्त्री उद्धार समिति' उनकी समाज-सेवी संस्था है। संस्था की गतिविधियों के सिलसिले में ताई अक्सर बाहर आती-जाती रहती हैं। जद्दन आपा के संग ही वह पहली बार ताई के घर गयी थी। जद्दन आपा के मर्द ने दूसरी औरत रख ली थी। खाने-खर्च को वह कानी कौड़ी नहीं ढीली करता था। हाथ-पैर ऊपर से तोड़ता रहता। वह हफ्तों काम पर नहीं पहुँच पाती। पटवर्धन ताई ने जद्दन आपा की भरपूर मदद की। बच्चों को स्कूल में भर्ती करवाया। मर्द पर मामला दायर करवाकर गुज़ारा-भत्ता दिलवाया—सीधे तनख्वाह से कटकर पैसे मिलने लगे आपा को।

मुख्य सड़क पार कर वह जे.वी. नगर के ठीक सामने आ गई। ज़र्द सन्नाटे का भय रह-रहकर रीढ़ में चिलकें मारने लगा। कॉलोनी की चौकसी करनेवाला गुरखा तक नज़र नहीं आ रहा, न किसी गली से उठती उसके डण्डे की लयात्मक ध्वनि। अचानक चौड़ी माँग-सी कढ़ी बीचोंबीच वाली सड़क के आखिरी छोर पर उसे तीन परछाइयाँ डोलतीं, आगे बढ़ती दिखाई दीं। भय से गला सूख आया। फुर्ती से किनारे लगी मेहँदी की बेतरतीब बाड़ के पीछे दुबक ली। साँस दबाई। करीब से गुज़रे तो उनकी बतकही ने उसे तनिक सहज किया। आशंका निर्मूल सिद्ध हुई—रात पाली से छूटे हुए कामगार थे वे, हाथों में खाने का डिब्बा झुलाते हुए।

हड़बड़ी और उलझन के चलते छोटी शिब्बू को जगाना ही भूल गयी। उसे सारी बातें समझा देती कि चन्दू लौटेगा और आधी रात को अपने दरवाज़े पर ताला पड़ा पाएगा तो भरोसा नहीं, गुस्से में आकर ताला तोड़ने लगे। सिखा देती कि बाप जैसे ही दरवाज़ा भड़भड़ाए, शिब्बू उसे भीतर से ही आश्वस्त कर दे कि विमला मौसी के घर से उनके छोटे बच्चे के अचानक बीमार होने की खबर आयी थी। आई (माँ) उसका रास्ता देखते हुए अन्त में उन्हें बाहर से बन्द कर मौसी के घर को चली गई। वह अपने दोस्त काली भाऊ के यहाँ जाकर सो जाए या लौटकर गोदाम में रात गुज़ार ले। गोदाम या चकला!

"छोटी बात नईं, मंगला! जब तलक मैं शहर में, सेठ अक्खा गोदाम की जिम्मेवारी मेरे को सौंपा...लोडिंग-अनलोडिंग, सब्ब मेरा ताबे में..."

"ले, सँभाल के रख गड्डी, पूरे दस हजार हैं! दस बजे पाण्डुरंग सेठ पाण्डुरंगवाड़ी में बुलाया मेरे को, पगड़ी अऊर बिल बदलने का पैसा दे के कल ही मैं खोली का चाबी लेकर आएगा...बावली सरखी क्या देख रई...जा, होशियारी से रख जाके गड्डी... मुफ्त मदद नईं किया सेठ...खून-पसीना एक करता मैं उसके वास्ते...उसको पन मालूम, आदमी बोत मिलते, ईमानदारी नहीं मिलती..."

तर्क में दम था। मुँह में ताला पड़ गया, मगर अन्तर्मन में पालथी मारे सन्देह झाँसे में नहीं आया था। आटे के डिब्बे में गड्डी छिपाकर वह रात-भर बिछौने पर करवटें भरती रही। रातोंरात ऐसा क्या चमत्कार घट गया जो सेठ उस पर इतना कृपालु हो उठा कि पूरे गोदाम की ज़िम्मेवारी उसने अपने एक मामूली-से ड्राइवर को सौंप दी? ड्राइवर वह बहुत अच्छा है। अड़तालीस घण्टे बिना पलक झपकाए सीट पर सीधा बैठा रह सकता है। बिना बोतल के वह भी नहीं। लेकिन...सन्देह के बावजूद उसको सपने में भी अन्देशा नहीं था कि मेहनत और

ईमानदारी की आड़ में आ रही जिस रकम से वह बच्चों को अच्छे स्कूल में पढ़ा रही है, झोंपड़ी छोड़ खोली में आ बसी है, अच्छा खा-पहन रही है, सुख-सुविधाएँ जुगाड़ रही है, वह स्त्री के देह-व्यापार से कमाई गयी रकम है! छिः, छिः! चन्दू का यह स्वरूप भी हो सकता है? सकता है क्या, है! असलियत पूरी क्रूरता और कुरूपता के साथ उघड़ चुकी है, उसके विश्वास को निर्ममता से रौंदती हुई।

पटवर्धन ताई से कहेगी, गेंदा को तुरन्त उसकी खोली से हटाकर अन्यत्र छिपा दे। छिपाने की क्या जरूरत है? ताई उसे सीधे पुलिस के हवाले कर सकती है! पुलिस गेंदा को अपने संरक्षण में ले लेगी। पूछताछ करके तत्काल उस अड्डे पर छापा मारेगी, जहाँ दलाल निश्छल छोकरियों की मजबूरियों का फायदा उठाकर उन्हें धन्धा करने के लिए विवश करते हैं।

कमाठीपुरा! जगह का कोई ऐसा ही नाम बता रही थी गेंदा। 'चन्दू भी उन सबके साथ पकड़ा जाएगा!' तिरस्कार से कोई उसके कानों में फुसफुसाया। वह एकबारगी काँपकर खड़ी हो गई। लगा, पुलिस चन्दू को बेड़ियों में जकड़े हुए ठीक उसकी ओर बढ़ती चली आ रही है। उसे कुत्ते की तरह घसीटती हुई! घुटनों पर निर्ममता से प्रहार करती हुई...प्रहार के साथ एक भीषण आर्त्तनाद उठता है। हवाएँ सहमकर दुबक जाती हैं! मगर चीखें हैं कि लगातार वातावरण को रौंद रही हैं! उसकी ठिठकी देह पसीने से तर हो उठी।

चन्दू को सज़ा हो सकती है—एक साल, दो साल...कई साल...नौकरी छूट जाएगी उसकी। उनकी गृहस्थी का जुआ भूमि पर आ गिरेगा। बरसों बाद अभावों की मार से वह अपनी पीठ बचा पाई है! एक झटके में सारा खेल खत्म हो जायेगा। फिर वही दलदल! घर-घर बर्तन घिसना! स्वामिनियों के व्यंग्य-बाण झेलना! लौट सकेगी उसी ज़िन्दगी में?

नहीं...नहीं लौट सकेगी! मामूली-मामूली-सी चीज़ों के लिए बच्चों का तरसना नहीं झेल सकेगी...क्यों इतना सोच-विचार कर रही है! गेंदा क्या निर्दोष है? किसने कहा था कि वह एक सर्वथा अनजान व्यक्ति पर विश्वास करने की मूर्खता करे? उसके साथ चल दे? धीरज धरती। गाँव में रहकर मज़दूरी खोजती। पेट में पानी डालकर भी तो आदमी इज़्ज़त की ज़िन्दगी बसर कर लेता है! पसीने की बूँद पिला-पिलाकर उसने नहीं अपनी गृहस्थी पोसी? चन्दू की ड्राइवरी तो बहुत बाद में लगी। उसे ड्राइवरी सिखाने के लिए भी तो उसने साढ़े चार सौ रुपये अपनी एक सेठानी से उधार लेकर भरे थे। महीने-के-महीने पचास रुपये पगार में से कटवाती रही थी। सहानुभूति के बहाने कितनों ने प्रलोभन फेंका, 'प्रभु सेठ से मिल ले, तीन हज़ार लेकर दुबई में नौकरी दिलवाता है! खूब कमाई होती है वहाँ, दलिद्दर कट जाएगा साल-खाँड़ में।' हुँह! क्या होता है वहाँ, कौन जाने? अपनी मिट्टी की रूखी-सूखी मंजूर रही, बनिबस्त पराये मुल्क की हलवा-पूड़ी के।

चन्दू का क्या दोष? धन्धा फिर धन्धा है, चमड़े का हो या चमड़ी का! देखा नहीं, सुना खूब है। बड़े-बड़े होटलों में औरतों का नंगा नाच करवाते हैं सेठिए! कितनी इज़्ज़त है समाज में उनकी? ठाठ से लम्बी गाड़ी में घूमते हैं। कोई उठाता है उँगली उन पर?

यही घर है। बालकनी से लटका हुआ 'दलित स्त्री उद्धार समिति' का बड़ा-सा बोर्ड ठीक सिर के ऊपर है। जीने के निकट पहुँचकर देह अड़ियल बैल-सी ऐंठ गई। बस, एक माला सीढ़ियाँ चढ़ेगी और उसके जीवन का फैसला हो जाएगा। कुछ ही घंटों में चन्दू जेल की सलाखों के पीछे होगा...जेल के सूखे टीकड़ों को पानी के साथ जबरन निगलता हुआ। आखिर पैसा कमाने की जिस राह पर वह आँखों में पट्टी बाँधकर चल पड़ा है...किसके लिए? पेट में दारू और कुछेक स्त्रियों का सहवास-सुख भोग भी लेता हो तो क्या, उनकी सुख-सुविधाओं का खयाल नहीं रखता?

मूर्ख है वह। मूर्ख नहीं, अन्धी भी।

स्वयं गृहस्थी की सुख-शान्ति को तीली दिखाने जा रही है। लौट चले। खोली में बन्द चिनगारी को खोली में ही तोप दे। चन्दू के आते ही उसे चन्दू को सौंप दे। वह हिसाब-किताब कर लेगा। उसे क्या लेना-देना गेंदा से? कौन लगती है वह उसकी? एक अनजान लड़की की खातिर वह इतना बड़ा जोखिम उठाने चली है! उसके दुःख से द्रवित हो...परिणाम सोचे बिना। सारी दुनिया के उद्धार का ठेका उसी ने ले रखा है? गेंदा की ही तरह अभावों की मार से विचलित हो उसकी शिब्बू किसी दिन किसी के बहकावे में आ, ऊँच-नीच सोचे बिना गलत कदम उठा लेगी तो? कौन ज़िम्मेदार होगा उसकी बरबादी के लिए? आँतों की आग शैतान होती है, शैतान! विवेक-बुद्धि निगल लेती है। पति को जेल पहुँचाने की जुगत भिड़ा वह अपने बच्चों को उसी चौराहे की ओर नहीं ढकेल रही जहाँ पहुँचकर गेंदा घर से भागने को विवश हुई?

दलालों को भनक हो गई कि अड्डे पर छापा पड़ने के पीछे उसका हाथ है तो वे उसे ज़िन्दा छोड़ेंगे? चन्दू अवश्य अपनी करनी का फल सींखचों के भीतर भुगत रहा होगा, पर वे उसके घर को फूँकने से चूकेंगे? एक गेंदा के पीछे पाँच ज़िन्दगियाँ नष्ट हो जाएँगी, पाँच वह, चन्दू, शिब्बू, दीनू, गुड्डू—सब...

घर लौट चले। फौरन। भावुकतावश जीने पर उसके पाँव उठ गए तो अनर्थ हो जाएगा। कुछ नहीं सोचेगी। सोचना ही नहीं चाहती। घूमी, घूमकर ज़ीना छोड़ तेज़ कदमों से इमारत के बाहर आ गई। अचानक महसूस हुआ, तन पर लिपटी कीमती नौवारी माहेश्वरी साड़ी से लपटें फूट पड़ी हैं...उन लपटों की लपलपाती तेज़ आँच में उसकी पूरी देह 'चिड़-चिड़' करती सुलग रही है और अपने ही मांस की चिराँध उसके नथुनों में भरती जा रही है! उसका दम घुट रहा है। आँखें कोटरों से छटकी पड़ रही हैं...

घर! कैसा घर? गेंदा की बलि के बिना पर जीवनदान प्राप्त करता घर! चन्दू के कुकृत्यों की चिनाई से मज़बूत होती उस घर की दीवारें! छिः-छिः! उस घर में वह साँस ले सकेगी? स्त्री होकर स्त्री के दुर्भाग्य में साझीदार हो सकेगी? चन्दू बेरोज़गार था। वह बेरोज़गारी बरसों उसकी गृहस्थी की रीढ़ में पैने दाँत गड़ाए उसके धैर्य को चुनौती देती रही थी। तब साहस नहीं तजा, अब क्यों कमज़ोर हो रही है?

आगे बढ़ते हुए पाँवों पर सहसा किसी की मुट्ठियाँ आ कसीं और कसती ही चली गयीं

—इतनी कि वह डग भरना चाहकर भी पाँव उठा नहीं पा रही। शायद गेंदा की कलाइयाँ लग रही हैं...पाँवों की ओर झुककर उसने अपने को उस जकड़न से मुक्त करना चाहा मगर यह देख स्तम्भित रह गई। उसके बढ़े हुए हाथ में जो कलाई आ समाई है, वह नन्हे हाथों में प्लास्टिक की चूड़ियाँ पहने हुए गेंदा की नहीं, शिब्बू की है।

'शिब्बू!' वह अस्फुट स्वर में बुदबुदाई और वह बुदबुदाहट तीखी सिहरन की भाँति उसकी सम्पूर्ण चेतना को झनझना गई। न जाने उसे क्या हुआ कि फिरकी की तरह पलटकर वह पटवर्धन ताई के घर की ओर सरपट भागी। सैकड़ों अश्वों की एड़ उसकी टाँगों में आ समाई। वह उनके ज़ीने की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए नहीं, तकरीबन उड़ती-सी फलाँगने लगी। दरवाज़े के सम्मुख होते ही वह पूरी ताकत से उनका दरवाज़ा भड़भड़ाने लगी—"पटवर्धन ताई, ओ पटवर्धन ताई! ताई! जल्दी दरवाज़ा खोलो!"

उसकी पुकार का असर हुआ। भीतर बत्ती जली। एक पदचाप उसकी ओर बढ़ती हुई सुनाई दी।

जिनावर

"तांगेवालेऽऽऽऽ...रुकना भईऽऽऽऽऽ!"

पुकार पीछे से आई थी। हल्की लगाम खींचकर उसने सरवरी को रोका। दो-चार डग भरकर सरवरी ढीली-सी खड़ी हो गई। बाईं टांग को उठाकर झटका देती-सी, मानो टांग पर चढ़े आ रहे किसी कीड़े-मकोड़े को झटककर परे फेंक देने को व्याकुल हो। गली से मुख्य सड़क तक आते हुए ऐसी कोई हरकत उसने नहीं की। बस, अभी ही उसने बाईं टांग झटकनी शुरू की। उतरकर देख लेना चाहिए उसे। लेकिन किसी सवारी की पीछे से आई पुकार ने उसे अपनी गद्दी से हिलने नहीं दिया। आगे को झुककर, उसने गर्दन मोड़कर पीछे की ओर देखा। पांच बुरकेवालियां कनिया में दो औलादें दबाए, तीन को कंधे से दबोच उन्हें लगभग घसीटती हुई-सी 'फद-फद' करती तांगे की ओर दौड़ी चली आ रही दिखीं।

उनमें से ठमके कद वाली ने अपनी हांफ को नियंत्रित करने की चेष्टा करते हुए गर्दन ऊँची तानी—"चलेंगे...भाई जान?"

"जाना किधर है, बीबी?"

"बगल में...चावड़ी बाज़ार।" कनिया से खिसकती औलाद को उचकाकर उसने बाजू में कसा।

असलम कुछ सोच में पड़ गया। पांच ख़ासी तंदुरूस्त जनानी। कनिया में दो। उंगलियां धरे दो—कुल जमा नौ सवारी! चार आधी ही सही। नामुमकिन। छूंछा तांगा ही सरवरी कढ़िलती हुई-सी ढो पा रही। सवारियों की बरात दम निचोड़ लेगी? न, कुल्हाड़ी नहीं देनी टखनों पर।

टालने के लिए अनिच्छा से मुंह घुमा लिया सीध में—"दस रुपये लगेंगे... बीबी।"

"दस रुपये...लो सुनो इनकी अति!" ठमके कदवाली ने मुंह बनाकर अपनी संगवालियों से आँखें उचकाईं। फिर तमककर उसकी ओर देखा।—"नए लगते हो शहर में? जाना कितना? ये सामने रहा पुल के नीचे चौरास्ता...चौरास्ता पार करते ही जामा मस्जिद वाली गली...गली लांघ के मुड़े नहीं कि मस्जिद के पीछे वो रहा चावड़ी बाज़ार। सोच-समझकर तो मुंह खोलो, मियां!"

"सोच समझकर ही बोल रहा बीबी, रोज़ का धंधा है। सवारियां भी तो देखो!" जाना

नहीं था उसे। पक्का। फिज़ूल की बहस में फंस गया। लगता था कि दस की बात सुनते ही जनानियां मुंह बिदकाकर आगे बढ़ लेंगी।

"चलो, आठ ले लो, आग बरस रही सिर पर...बच्चे झुलस रहे।" उनमें से लंबे कदवाली ने ऊबकर 'न तेरी न मेरी' वाले लहज़े में उसे पटाना चाहा।

"सवाल ही नहीं उठता, बीबी।" वहां से हटने के ख़याल से उसने सरवरी की लगाम खींची। सवारियों के लिए ही निकला है घर से, तय करके कि सिंगल या ज़्यादा-से-ज़्यादा डबल सवारी ही बिठाएगा तांगे पर। हालांकि सिंगल या डबल सवारी रिक्शा छोड़, तांगे पर मुश्किल से ही बैठती हैं। कुनबा संग हो तो तांगा किफ़ायती पड़ता है!

"मिज़ाज न दिखाओ, मियां...ठहरो, ठहरो..." उसी ठमके कदवाली ने उसकी उद्दंडता बरदाश्त करते हुए अपना ग़ुस्सा चबाया और साथवालियों की ओर मुड़ी—"जुदा-जुदा रिक्शे के झमेले में पड़ने से बेहतर होगा तांगा..." वाक्य अधूरा छोड़कर उसने गर्दन नीचे किए हुए हथियार डाले—"चलो मियां, तुम्हारी ही ज़िद्द सही..." आगे बढ़कर उसने औलादों को तांगे पर चढ़ने का इशारा किया।

लो, फंसे! अब छुटकारा नहीं। मजबूरन उसने सरवरी की लगाम खींची।

खड़ी सरवरी अब तक बाईं टांग झटक रही है। जनानियों से झिक-झिक में लगा रहा। उतरकर उसकी टांग नहीं देख सकता था? कुछ उसे हो ज़रूर रहा है। कभी नहीं देखा इस तरह से टांग झटकते। बढ़ते बोझ से तांगा हिल रहा। उसका आशंकित हृदय कांप उठा। कहीं ऐसा न हो कि अशक्त सरवरी बीच सड़क पर चक्कर खाकर बैठ जाए और सवारियां धक्का खाए भेट के ठेले-सी लुढ़ककर रास्ते पर हों। आगे को झुककर उसने सरवरी के पुट्ठे सहलाए। सहलाहट के संग पुचकारा—उंगलियों में गूंगी चिरौरी भर।

फिर वही भ्रम। तांगा हिल रहा है या सरवरी की टांगें कांप रहीं?

उसके बोल सुनते ही सरवरी 'झप्प' से आगे को बढ़ दी। सुस्त चाल चलती हुई। साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि चलने में उसे भयंकर तकलीफ हो रही। लेकिन वह भी जैसे मालिक के नमक का हक़ अदा करने को कटिबद्ध हो। असलम बेबसी से तप आया। उसके पास काश कोई जादुई चिराग़ होता तो वह तत्काल अपनी सरवरी को अपनी जगह बिठाकर ख़ुद तांगे में जुत जाता। सरवरी की सुस्त टापें उसके कलेजे को खूंद रही हैं। ख़ुदा का शुक्र है, पुल तक खींच लाई है वह तांगा। आगे भी खींच ले जाए तो ग़नीमत समझो...

...ज़ुबैदा की नाबदानी ज़ुबान को क्या कहे! न जाने कौन-से जन्म की दुश्मनी निकाल रही है कमज़ात उसके और सरवरी के संग।

बीस-बाईस रोज़ से ज़मीन पर औंधी पड़ी तड़फड़ा रही है सरवरी। पुचकारकर खड़ा करता है तो घंटे-खंाड़ बाद ही पसर लेती है घुटने मोड़। कीच-भरी आंखें मींच। घरेलू उपाय आज़माकर थक गया। जिस-तिस के नुस्खे भी बेअसर रहे। घबराकर वज़ीराबाद पुल के उस पार की बस्ती में रह रहे जुम्मन हकीम के पांव पकड़ लिए। कोई भी उपाय करें! बस, उसकी सरवरी को चंगी कर दें। पहले नथुनों में छाले फदके, देखते-देखते टखनों में उतर आए। देह

निचुड़ने लगी। रोज़ी-रोटी है। उठकर खड़ी नहीं होगी तो उसके लौंडे-लौंडियां भूखों मरेंगे। जुम्मन मियां ने ढाढ़स बंधाया और उम्मीद दी कि वह धैर्य रखे। मर्ज़ उनकी पकड़ में आ गया है। ख़ुदा ने चाहा तो हफ़्ते-भर में उठ खड़ी होगी उसकी सरवरी।

जुम्मन मियां ने उसे एक और सलाह दी—"जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर काला कंबल ओढ़े एक अधनंगा फ़कीर बैठता है। असाध्य रोगियों और दुखियों को गालियों-भीगा दुआओं का काला तागा बांटता है। बहुतों का कष्ट दूर हुआ है उस चमत्कारी काले तागे से। फकीर से दुआओं का काला तागा लाकर वह फ़ौरन सरवरी की किसी टांग से बांध दे। दुआ व सही दवा ही अब सरवरी का इलाज है।

जुम्मन मियां की जड़ी-बूटी के काढ़े पिलाते हफ़्ता और निकल गया। सरवरी के टखनों के छाले पीप उगलने लगे। लक्षण शुभ नहीं थे। बगल के करीम ने उसे सलाह दी कि नीम-हकीम के चक्करों में पड़ा हुआ वह समय और पैसा नष्ट न करे। जुम्मन मियां के वश का नहीं सरवरी का रोग। फ़ौरन जाकर वह किसी जानवर के डॉक्टर को दिखलाये। वैसे तो जमुनापार लक्ष्मी नगर में कहीं है जानवरों के इलाज के लिए कोई सरकारी अस्पताल या दवाख़ाना। लेकिन बेहतर यही होगा कि वह किसी प्राइवेट को ही दिखलाए। पैसे का मुंह न जोहे। पैसा ज़रूर ख़र्च होगा तगड़ा, मगर एक-दो सुई लगते ही शर्तिया उठ खड़ी होगी सरवरी।

उसकी उम्मीद के जुगनुओं में रोशनी टिमटिमाने लगी। घर में फाके पड़ रहे थे। जुबैदा के पांव पकड़ लिए उसने। मायके की पाव-भर की झांझें थीं उसकी। फुसलाया, बहलाया। रोज़ी-रोटी का वास्ता दिया। झांझें ले जाकर मोहल्ले के परली तरफ वाले सुनार को अधिये-तिहाये भाव में बेचकर डॉक्टर की फीस भरी, और सुइयां लगवाईं सरवरी को। असर न होते देख चौथे रोज़ डॉक्टर ने हाथ झाड़ लिये। सरवरी को 'ग्लेन्डरासन धोक्या' रोग हुआ है। रोग बिगड़ गया है। सरवरी को उनके पास पहले न लाकर उसने भयंकर भूल की। अब दवा नहीं, कोई चमत्कार ही उसे बचा सकता है।

सुनकर वह बेजान हो आया। कहां क्या क़सर रह गई सरवरी के इलाज में उससे! कुछ तो हुआ ही है। देशी दवाइयाँ आदमी ही नहीं, अब जिनावरों पर भी बेअसर होने लगी हैं। वरना पुरखों ने कौन सुइयां लगवाकर परवरिश की इनकी? महीना निकल गया सरवरी की तीमारदारी में। हाथ लग रही है नाउम्मीदी। कोठरी में पांव देते हुए कलेजा कांपता है उसका। जुबैदा की ज़ुबान चोर-देखे कुत्ते-सी उसे देखते ही बेतहाशा भौंकने लगती है, तरियाई हुई-"नामुरादो! कहां से ला_ऊं दोनों जून तुम्हारे पेट में डालने को...एक मैं ही साबुत बची हूं इस घर में, सो कहो तो अपनी बोटियां काट के चढ़ा दूं हांडी में पकने? मति मारी गई है। उसी मरी रांड को...सहलाता रहता है रात-दिन। बर्तन-भांडे तक फूंक दिए इलाज में। सबको डकारकर ही मरेगी डायन। अरे, और भी जानें हैं कुनबे में कमबख़्त! उनकी है परवाह, मर्दुए? आख़िर इन आठ-आठ पिल्लुओं को क्या दूं मुंह में—अंगारे? घोड़ी...घोड़ी...घोड़ी न हो गई रंडी सौत हो गई मेरी। नहीं रही तांगा खींचने के क़ाबिल तो घर क्यूं फूंक रहा उसके पीछे? लात लगा हरामज़ादी को और परे कर! मर्द है मर्द! दिहाड़ी कर कहीं...रिक्शा खींच

किराये पर। मगर तू है कि दिन-भर उसकी टांगों में घुसा उसके पुट्ठे सहलाता रहेगा, कमीने...”

“तड़ाक! तड़ाक!” अपना हाथ नहीं रोक पाया था सुबह—“ख़ुदा का ख़ौफ़ खा, बदज़ुबान! आग लगे तेरी गज़-भर की ज़ुबान को, कुतिया! जिस रोज़ बैठ गई न ये तेरी सौत, संखिया खाने की नौबत आ जाएगी पूरे कुनबे की, अनाप-शनाप न बका कर... समझी!”

“क्यों, क्या हमारे हाड़-गोड़ भी संग ले जाएगी रांड?”

“मुंह बंद कर, ज़ुबैदा...”

“मुंह सी तू, और संभाल अपने इन पिल्लुओं को...बैठा लेना इनके लिए कोई दूसरी अम्मा, जो पानी घूंट-घूंट के तेरी देह भी गरमाती रहे और ससुरे पिल्लुओं को भी पालती रहे...अपने बस की नहीं तेरी ये फ़ाक़ेमस्ती...पहली जा के दूसरे के यहां क्यों बैठ गई...अब समझ में आ रहा।”

‘तड़...तड़...तड़...!’ उसका झन्नाटेदार हाथ खाकर बुँबुआती हुई ज़ुबैदा फ़र्श पर औंधे हो गई।

कच्चे बरामदे में एक ओर खड़े तांगे की ओट में बंधी सरवरी पर निगाह गई असलम की। पता नहीं मन में क्या आया कि वह सीधा सरवरी की ओर बढ़ गया। कुछ देर उसे सहलाता-घूरता रहा। फिर खूंटे से खोलकर उसे बलात् खड़ा करने की चेष्टा करने लगा। अशक्त सरवरी ने जैसे उसके मनोभाव पढ़ लिए। उसने स्वयंमेव उठने की असफल कोशिश की कि घुटने लड़खड़ाए। वह बैठ गई, लेकिन अपनी कोशिश उसने नहीं छोड़ी। कुछ पलों बाद मवाद से चटचटाते टखनों पर ज़ोर दे, उचकती हुई-सी दोबारा खड़े होने के प्रयास में एकाएक सफल हो वह एकदम से तनकर सीधी खड़ी हो गई।

उसके कान के निकट मुंह ले जाकर असलम लगभग कांपती आवाज़ में फुसफसाया —“एकाध फेरा हो जाए, सरवरी! दो रोज़ से चूल्हे में आग नहीं पड़ी!”

उसे अचरज हुआ। तांगे में जुती हुई सरवरी ने मोहल्ले की गली पार करते हुए राई-रत्ती यह आभास नहीं होने दिया कि वह महीने-भर से बीमार चल रही है और दो डग भरने में भी उसे घोर कष्ट हो रहा।

ज़ुबैदा का ग़ुस्सा अनुचित नहीं। लेकिन वह करे भी तो क्या करे? ईंट-गारा ढोना उसके बूते का नहीं। तांगे की गद्दी से लगातार चिपकी देह को जंग लग चुका है। हाथ चाबुक उठा हवा में हाथ-भर से ज़्यादा डोल-फिर नहीं पाते। अपनी टांगों के इस्तेमाल की उसे आदत नहीं रही। सरवरी ने कभी मौक़ा ही नहीं दिया। कोठरी के अहाते से, कोठरी के भीतर तक— वह यही महसूस करता कि उतने क़दम भी जो वह चलकर भीतर आता है, अपनी नहीं, सरवरी की ही टांगों से। आँखें खोलते ही तांगा देखा। लोरी की जगह घोड़ों की हिनहिनाहट सुनी। उन्हीं की टांगों के बीच गुल्ली-डंडा खेला। लीद से लफोंदी ज़मीन पर फिरकियां नचाईं। अब्बा तांगा चलाते थे। अब्बा के अब्बू तांगा चलाते थे, बूढ़ों की उभरी नसों-सी आगरे

की तंग गलियों में। उसकी मसें भीगते ही अब्बा परिवार समेत दिल्ली आ गए। एक रोज़ बोले उससे—'नई चली फिटफिटिया पर बैठने को शौकिया रही हैं सवारियां इधर। दिल्ली चलते हैं, बरख़ुरदार! बड़ा शहर है। वहां फिटफिटिया ही फिटफिटिया भरी हुई हैं सड़कों पर। सवारियां तांगा देख ललकती हैं बैठने को। सुना है, किराया भी मुंहगांगा मिलता है...'

"बस, बस...यहीं रोकना मियां, कहां ऊंट की तरह मुंह उठाए चले जा रहे... कानों में तेल डाल रखा है क्या?" ठमके कदवाली ने झुंझलाकर उलाहना दिया तो उसने फ़ौरन लगाम खींची और छह-सात डग भर, सरवरी के खड़े होते ही ख़ुदा को शुक्रिया देने वाले अंदाज़ में चौंध फेंक रहे आसमान की ओर आंखें उठा दीं। भीगी मया से आगे झुक सरवरी के पुट्ठे सहलाए—इज़्ज़त मिट्टी होने से बचा ली गरीब की।

औलादों को उतारते हुई कोई दूसरी जनानी तुनकी—"मील-भर आगे घसीट लाए मियां, अब पलटकर टांगें तोड़ो...तांगा करने का फ़ायदा?"

सामने आ, ठमके कद वाली ने अपने गोल चेहरे को गुस्से से झटका और बटुआ खोल दस का नोट निकालकर उसकी ओर यूं तान दिया जैसे वह तांगे का किराया नहीं, जबरन पीछे पड़े किसी भिखारी को भीख दे रही हो। उसने जनानी के चेहरे के भावों को अनदेखा कर नोट भूखे को दिखी रोटी-सा लपक लिया और उसे कृतज्ञता से दोनों आंखों से छुआता, अस्फुट होठों से पता नहीं क्या बुदबुदाया।

लौटते में जामा मस्जिद के सामने से किलो-भर बड़े गोश्त की बिरियानी बंधवा ले चलने की बात उसे मुनासिब नहीं लगी। यह नोट उसके ख़र्च के हक़ का नहीं। सीधे घर पहुंचकर ज़ुबैदा के हाथ पर रख देगा। ठीक-ठाक मिज़ाज हुए तो हँसकर चुटकी ले डालेगा —'रख अपनी सौत की कमाई! चार क़दम चलने-भर की भी ताक़त नहीं सरवरी के जिस्म में, फिर भी नौ-नौ सवारियां ढोकर चली आ रही है तेरी खातिर...' रौनक़ तब भी नहीं फूटेगी कमबख़्त के उबले आलू-से थोबड़े पर! जब से आई है, 'न सावन सूखे, न भादो हरे' वाले मिज़ाज में ही पाया। अब क्या उम्मीद करे? ठीक है, जैसी भी सही, उसकी जोरू है। जैसे-तैसे उसकी गृहस्थी का जुआ खींच रही। पहली तो बड़ी बेमुरव्वती से पांच औलादें पटक चलती बनी थी। तीन ज़ुबैदा से हुए। कम कुनबा पड़ा सिर पर? भेद बरतती ज़रूर है अपने-पराए का, मगर छाती पर सांप नहीं लोटाती! ज़ुबान का क्या करे उसकी? नाबदान है ससुरी, नाबदान। यही एक ऐब मानकर ग़म खा लिया उसने।

सरवरी को जानलेवा हालत में इतना दौड़ा लिया, काफ़ी है। मुनासिब यही होगा कि कमाई का अधिक लालच न कर वह बिना सवारी के ही घर लौट चले। ख़ुद भी तांगे से उतर ले, मगर कुछ देर सरवरी को सुस्ता ज़रूर लेने दे। ख़याल दुरुस्त लगा। तांगा सड़क के एक किनारे लगा, उतरकर वह नीचे आ खड़ा हुआ। उसे दुलराने के ख़याल से वह उसके आगे आया। उसका चेहरा दोनों हाथों में लेकर करुणा से उसकी आंखों में झांका। झांकते ही कलेजा मुंह को आ गया। सरवरी की कीच-भरी निस्तेज डूबती आंखों में बुझने से पूर्व की लौ धधकती दिखी! डॉ. सक्सेना का वाक्य दिमाग में हथौड़ा-सा लहराया—'एकाध रोज़ भी निकाल दे सरवरी, तो क़िस्मत समझो अपनी...'

उसे ख़ाली तांगा लिए खड़ा देख सवारियों ने जिज्ञासा प्रकट की—"चांदनी चौक चलेंगे, भाई...हनुमान मंदिर...लाल किला..."

पहले तीन थे। दूसरे, पूरा परिवार...तीसरे, सिर्फ़ दो।

डांवाडोल हो रही अपनी नीयत को उसने हड़काया। आदमी हो या राक्षस! मरणासन्न जिनावर की परवाह न कर एकाध सवारियां ढो-ढा पांच-दस और काट लोगे तो क्या ज़िंदगी बसर हो जाएगी? सब्र से काम लो। जितनी दिहाड़ी बन पड़ी है उसी पर संतोष करो। कितना लंबा साथ रहा है तुम्हारा और सरवरी का! हरी खाई तब भी खुश, सूखी नसीब हुई तब भी कोई गिला नहीं।

नौचंदी के मेले से अब्बा ख़रीदकर लाए थे बछड़ी जैसी...बख़्तावर के न रहने पर।

चिलचिलाती धूप सहन नहीं हो पा रही है शायद सरवरी को।

चेहरे को सुस्कारते हुए रह-रहकर झटक रही है। बाईं टांग का झटकना बंद हो गया है। हो सकता है, झटक भी रही हो तो उसका ध्यान न गया हो। घर को पलट चले। यहां खड़े होकर सुस्ता भी ले दस-पंद्रह मिनट, फिर भी उसे घर जैसा आराम कहां? पानी-वानी भी तो नहीं पिला सकता यहां। चलें...क्यों? उसकी आंखों में एक बार फिर देखा उसने। नज़र घूम गई उसकी। दिल दहल उठा। कैसी अजनबी नज़रों से देख रही है? लगता है, तबीयत अधिक बिगड़ रही है सरवरी की। आंखें पानी-भरी कटोरी में तैर रही हैं जैसे।

"हैप्पी स्कूल चलोगे?" एक जनानी ने पूछा। अकेली सवारी। आगे-पीछे कोई नहीं दिखा। अपने मोहल्ले की ओर जाते हुए ही पड़ेगा बीच रास्ते हैप्पी स्कूल। बस, ज़रा घूमकर जाना होगा। बैठा न ले? दूर भी नहीं। चौरस्ता पार करते ही बाएं मुड़े कि आगरा होटल के ऐन सामने पड़ता है हैप्पी स्कूल! सवारी उतार, कोतवाली का ढलान उतरते ही सड़क पार है अपना मोहल्ला। उतनी दूर तक सरवरी को चलना तो पड़ेगा ही। सवारी के साथ सही।

उसे विचारमग्न पाकर जनानी ने अगला सवाल किया—"बैठूं?"

"बैठिए..."

"पहले तय कर लो, लोगे क्या?"

"चार..."

"तीन होते हैं अकेली सवारी के!"

उसने कोई बहस नहीं की। उचककर अपनी जगह हो लिया। सरवरी के पुट्ठे सहलाने की हिम्मत नहीं हुई, उसके बैठते ही चल दी। डगमगाती हुई-सी सुस्त चाल। सवारी को कोई हड़बड़ी नहीं दिखी। कई ऊबकर टोक देती हैं कि इस कछुआ चाल से चलना होता तो हम पैदल ही न निकल लेतीं! हाथ में किताब थी कोई। खोल ली होगी पढ़ने को। स्कूल के सामने उतरना है, अध्यापिका ही होगी। निश्चित...।

हैप्पी स्कूल के सामने उसने सरवरी की लगाम खींची। न भी खींचता तो शायद वह अपने-आप ही खड़ी हो जाती। उसके खड़े हो जाने के अंदाज़ से यही प्रतीत हुआ उसे।

ग्लानि हुई। जिनावर उसकी ज़रूरत समझ ही नहीं रहा, एक के बाद एक सहयोग भी कर रहा है और एक वह है कि सब कुछ जानते-बूझते हुए भी उसके कष्टों से मुंह फेरे, उसके ताप में अपनी रोटी सेंक रहा!

किराया तहमद की अंटी में खोंस कनखियों से उसने सरवरी का चेहरा देखा। माथा ठनका। उसकी टंगती हुई आंखें और बजबजाते हुए जबड़े ने उसे सहमा दिया। सरवरी की टांगें कांप रही हैं। जूड़ी-चढ़ी देह की भांति। यही आभास हो रहा है कि वह अपनी पूरी ताक़त-भर खड़े रहने की कोशिश कर रही और किसी भी क्षण उसकी निष्प्राण देह सड़क पर ढेर हो सकती है। आज रात मुश्किल है कटनी, क्या करेगा वह सरवरी के बिना! पेट में डालने को दाने नहीं जुट रहे, तांगे में जोतने को नई घोड़ी कहां से ख़रीदेगा? दोस्त-पड़ोसी सभी की तो ज़ेबें खंगाल चुका सरवरी के इलाज में और घर की हांडी...

सरवरी के बिना चूं-चम्मर करता हुआ ख़स्ताहाल तांगा क्या क़ीमत देगा? कमबख़्त कितनी मरम्मत खा चुका! कबाड़ के भाव लगाएंगे लोग! एक वक़्त था, रिक्शे रोज़-ब-रोज़ किराये पर मिल जाया करते थे। अब सेठ चालाक हो गए, डिपॉजिट मांगते हैं अच्छा-ख़ासा। बिहार से नया आया ख़ुर्रम नहीं कह रहा था कि अग्रवाल सेठ ने उससे पांच सौ रुपये डिपॉजिट बतौर रखवा लिए थे, यह कहकर कि इस शहर में तेरा आगा न पीछा, भरोसा कैसे हो कि तू रिक्शा लेकर रफूचक्कर न हो जाए?

उसे पता नहीं कि कब वह तांगे पर जा चढ़ा और कांपती टांगें लिये सरवरी उसके बैठते ही डग भरने लगी। उसके हृदय में ज्वार उठ रहा। उसकी आंतों में तेज़ाब से भरा भीमकाय देग खौल रहा। देग से लपटों-सी उठती भाप में सबसे पहले उसकी खोपड़ी झुलसी। भीतर का भेजा पिघली हुई रबड़-सा कनपटियों से चूने लगा।

भयावह भविष्य! आठ औलादें, बर्रों-सी भनभनाती हुई! नागिन की जीभ-सी प्रतिपल उसकी ओर लपलपाती हुई ज़ुबैदा की ज़ुबान। ज़हरीली काली ज़ुबान! कैसे सामना कर पाएगा वह?

सरवरी के लिए क्या नहीं किया उसने...बीवी कह लो, प्रेमिका कह लो, बहन कह लो, बेटी कह लो...अपने को बेचकर भी उसके हाड़-मांस बचा पाने की गारंटी होती तो बेझिझक बेचकर उसे बचा लेता।

सामने कोतवाली के मोड़ से तेज़ी से मुड़ रही एक सफ़ेद फिएट, जिसे एक लड़की चला रही थी, रास्ता पाने के लिए उसे लक्ष्य कर हॉर्न पर हॉर्न दिए जा रही। उसे पता नहीं लगा कि वह अचानक सड़क के बीचोबीच आ गया है और नाक की सीध पर बढ़ा जा रहा है। फिएट के बाईं ओर भारी-भरकम डीटीसी की बस फंसी हुई चल रही, जो फिएट को सड़क पर कुछ और सहूलियत देने को राज़ी नहीं दिखी। सामने से चले आ रहे एक पर एक वाहनों का बढ़ता दबाव...। पास आते-आते लड़की ने दोबारा हॉर्न पर हॉर्न दे, अपनी गाड़ी तांगा बचाते हुए काट ले जाने की सतर्क चेष्टा की, किंतु उसके ब्रेक पर पांव देने के बावजूद गाड़ी के दाहिने मडगार्ड का कोना सरवरी की बाईं टांग को टक्कर देता हुआ कुछ आगे

जाकर झटके से रुक गया। 'पों-पों-पों' का कर्णभेदी प्रदूषण फैलाते दोनों ओर के वाहन अकस्मात हुई इस दुर्घटना से स्तंभित हो अपनी-अपनी जगह ठिठक गए। आगे वालों ने देखा —पलक झपकते सरवरी सड़क के बीचोंबीच ढेर हो गई और झुलसी देह-सी छटपटाने लगी। उसके जबड़ों से बजबजाता फेचुकुर बहने लगा। आंखें टंग गईं। टूटी हुई बाईं टांग सड़क पर ख़ून की पतली धाराएं बनाती हुई रह-रहकर चिहुंकते उसके शरीर के साथ कांप उठती। जुड़ती उत्सुक भीड़ ने सरवरी के इर्दगिर्द कौतूहल का घेरा डाल दिया।

तांगा बचाने में अपनी पूरी चालकीय कुशलता लगा देने के बावजूद दुर्घटना बचा पाने में असमर्थ लड़की अपनी साथ वाली महिला के संग घबराई हुई-सी, लोगों के घेरे को तोड़कर सरवरी के निकट पहुंची। सरवरी की नाजुक हालत देख लड़की की चीख़ निकलते-निकलते बची। सहमकर उसने अपनी आंखें मींच लीं।

लड़की राजस्थानी लहंगानुमा स्कर्ट और ब्लाउज पहने हुए थी। खूबसूरत, लंबी, छरहरी। उम्र होगी यही कोई अठारह-उन्नीस। बावजूद इसके, चेहरे पर एक क़िस्म की अबोध कोमलता।

लड़की को देखते ही अब तक माथा पकड़े उकड़ईं बैठा हुआ अवाक् असलम अचानक बुक्का फाड़कर रोते हुए रक्तरंजित औंधी पड़ी सरवरी की देह पर सियापा करता हुआ-सा, सीने पे मुक्के मारता, कटे वृक्ष-सा ढेर हो गया—"हाय, हार रे, मैं कहीं का नहीं रहा! क़हर टूट पड़ा मुझ ग़रीब पर...बरबाद हो गया, बरबाद...मार डाला मेरी सरवरी को... हाय मेरी रोज़ी-रोटी! पिछली नौचंदी में पूरे आठ हजार गिने थे बाकर मियां को...गाड़ी नहीं चलानी आती तो क्यों लेकर निकल पड़ती हैं औरों की हत्या करने...? हायऽऽऽ, हायऽऽऽ..."

लड़की के साथ वाली महिला से असलम का आक्षेप बरदाश्त नहीं हुआ। वह धैर्य खो एकाएक उत्तेजित हो आई—"क्या बक रहे हो? हमने मार डाला? बहरे थे क्या? हॉर्न पर हॉर्न दिए जा रही थी शीना, हटे क्यों नहीं रास्ते से? सड़क इठलाकर चलने के लिए बनी है तुम्हारे? जो जी में आया, उगले जा रहे हो तब से...तुम्हारी घोड़ी बीच सड़क बेकाबू होकर भिड़ जाए गाड़ी से तो दोष हमारा? क्यों? अपनी ग़लती मानो और हमें कोसना छोड़ो। पता नहीं बेवकूफ़ ट्रैफिक वाले भरी सड़कों पर बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, भैंसागाड़ी क्यूं छोड़ देते हैं टक्कर मारने...?"

दुर्घटना से आतंकित लड़की को आंटी के तर्कों ने कोई बल नहीं दिया। उसने कंपित स्वर में उपस्थित लोगों को संबोधित कर प्रतिवाद किया—"न, मैं बाएं हो सकती थी न दाएं...बाएं डीटीसी की बस बराबर दबाए हुए थी, दाएं तांगा!"

"सौ-डेढ़ सौ रुपये लो और पिंड छोड़ो। पलस्तर चढ़वा लेना इसकी टांग पर।"

महिला की नरमाई का उलटा असर हुआ असलम पर—"क्यों ग़रीब से मज़ाक़ कर रही हो, बीबी! सौ-डेढ़ सौ में पलस्तर चढ़ भी जाए तो क्या जान बच जाएगी इसकी? हालत नहीं देख रहीं जिनावर की? हायऽऽ! कैसे औलादें पलेंगी...कहां से ख़रीदूंगा नई घोड़ी... पुराना क़र्ज़ ही अब तक अदा नहीं हुआ! मैं लुट गया मेरे ख़ुदा! लुट गया..." उसने दोनों

हथेलियों से अपना माथा कूटा।

असलम के कारुणिक विलाप से भीड़ की सहानुभूति तर्कों से परे हो, उसके लिए पसीजी।

"दूध के दांत टूटे नहीं, अमीरज़ादी निकल पड़ी हवाई जहाज़ उड़ाने।"

"भई, कारवालों के कारनामे कोई नये ठहरे? आदमी कुचलते देर नहीं लगती, जानवर की क्या बिसात!"

"उठ! जा! जाके चौकी में रपट लिखवा! इनका क्या, प्राण निकल रहे होते तेरे तब भी ये सौ का पत्ता बढ़ाकर यही कहतीं...जाके प्लास्टर चढ़वा लो टांग पे।"

कोतवाली बगल में ही थी। दुर्घटना का शोर-शराबा वहां तक पहुंच गया।

दो हवलदारों के संग छोटे दरोगा तत्काल घटनास्थल पर पहुंच गए। पहुंचते ही अवरुद्ध यातायात के भारी जमाव को सुचारु करने के लिए सबसे पहले उन्होंने तांगे और घायल घोड़ी के ईर्द-गिर्द इकट्ठी तमाशबीन भीड़ को डांट-डपटकर भगाया। फिर दोनों दिशाओं से आने-जाने वाली फंसी गाड़ियों के आगे निकलने का रास्ता बनाया।

छोटे दरोगा इस बीच मामले की जानकारी हेतु लड़की और महिला की ओर मुख़ातिब हुए। पक्ष सुना। लाइसेंस देखा। फिर असलम से वास्तविकता जाननी चाही। असलम विचलित-सा दरोगा के पांवों में लोट गया—"तबाह हो गया सरकार! जीते-जी दफ़न हो गया...मार डाला इन बीबियों ने मेरी सरवरी को..."

"चुप बेहूदे! जो पूछा जाए वही बता।" हवलदार ने डंडा उठा उसे लड़की और महिला की ओर अभद्र तरीके से इंगित करने पर घुड़का।

"मैं क्या करूं, सरकार! मैंने बहुत बचने की कोशिश की..."

"वो तो बीच सड़क पर खड़ा तेरा तांगा ही बता रहा है कि तूने कितना बचने की कोशिश की...हरामज़ादे!"

"सरकार..."

"अब मिमियाता ही रहेगा कि कुछ भकुरेगा भी?"

"सब बताऊंगा सरकार, मेरी रपट लिख लो...मैं तबाह हो गया..."असलम की रपट लिखाने की बात सुनते ही लड़की का चेहरा सूखे पत्ते-सा टूटा।

"तू घबराती क्यों है, सांच को आंच क्या!" महिला ने अपने कंधे पर कसते लड़की के पंजे को थपथपाकर ढाढ़स बंधाया। फिर दरोगा की ओर मुड़कर उनसे अंग्रेज़ी में कुछ परामर्श करने लगीं। उनका आशय भांप दरोगा ने उन्हें स्पष्ट किया कि तांगेवाले से वे स्वयं बात करके देखें। वह उनका कहा मान जाए तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी, हालांकि उन्हें उम्मीद नहीं है कि तांगेवाला इतनी आसानी से उनका पिंड छोड़ देगा। ग़लती उसकी हो न हो, रपट लिखवाए बिना वह नहीं मानेगा। सड़क पार ही इन लोगों की सघन बस्ती है। इसकी एक हांक पर आनन-फानन कोतवाली घिर जाएगी।

“देखिए, आकर खड़े हो गए कि नहीं पांच-छह ख़ैरख़्वाह!” निकट आ खड़े हुए रिक्शेवालों की ओर इशारा किया उन्होंने।

हवलदार को कुछ हिदायतें देकर दरोगा पुनः उनके निकट आए—“आइए, कोतवाली चलते हैं।” दरोग़ा के स्वर में अबकी नरमाई की जगह आदेशात्मक पुट था।

लड़की कोतवाली चलने के नाम से और दरोगा के स्वर में अनपेक्षित आए परिवर्तन से भयभीत हो उठी। दरअसल, उसे और महिला को अब तक उम्मीद थी कि चूंकि दोष उनका नहीं है, अतः मामला सड़क पर ही कुछ दे-दिलाकर रफ़ा-दफ़ा हो जाएगा। लेकिन आसार जटिल से जटिलतर होते दृष्टिगत हुए। एक तो वे स्त्रियां, ऊपर से पुलिस के संग कोतवाली जाना उन्हें अटपटा ही नहीं लग रहा था, बल्कि आरोपित अभियुक्त-भाव से भी आतंकित किए हुए था। रास्ते चलते लोग उन्हें कौतुक से देख अटक रहे थे।

कोतवाली पहुंचकर महिला ने विवेक से काम लिया—“शीना, पापा को फ़ोन कर लो। उनसे कह दो कि वे तुरंत दरियागंज की कोतवाली पहुंच जाएं।” प्रतिक्रिया में लड़की के चेहरे पर गहराए असमंजस और संकोच-भाव ने उन्हें चेताया कि लड़की की मनःस्थिति इस समय इस योग्य नहीं है कि वह अपने द्वारा हुई आकस्मिक दुर्घटना की सूचना स्वयं पिता को दे सके। गाड़ी बढ़िया चलाने लगी है तो क्या, है तो वह अभी बच्ची ही।

थाना प्रभारी की अनुमति लेकर उन्होंने फ़ोन अपने समक्ष खींच लिया और लड़की के पिता के कार्यालय का नंबर डायल करने लगीं। उन्हें आशंका थी कि दोपहर के एक बजने वाले हैं। कहीं वे लंच के लिए अपनी सीट से न उठ गए हों। किंतु उधर से हुई ‘हैलो’ से उनके चेहरे पर आश्वस्ति-भाव गहराया। धीमे और संतुलित स्वर में उन्होंने उन्हें संक्षेप में स्थिति स्पष्ट कर दी और चेतावनी-भरा आग्रह दोहराया—“बस, चल दो, भैया! हां, तक़रीबन दसेक मिनट तो लग ही जाएंगे तुम्हें दरियागंज पहुंचते...”

जब तक लड़की के पिता कोतवाली पहुंचे, घटनास्थल से साथ आया दरोग़ा तांगेवाले की रिपोर्ट लिख चुका था।

थाना प्रभारी मि. गहलोत ने लड़की के पिता, मि. तिवारी का तपाक से उठकर स्वागत किया। उनका परिचय कार्ड पढ़कर वे व्यवहार में अतिरिक्त सहज हो आए। तत्काल सबके लिए चाय मंगवाई। लड़की से उन्होंने विशेष रूप से ‘कोल्ड ड्रिंक’ के लिए पूछा। उसके इंकार में सिर हिलाने पर दोबारा आग्रह किया।

चाय पीते हुए दुर्घटना के विषय में उनके दरमियान विस्तृत बातचीत हुई।

“ऐसा है तिवारीजी, मामला थोड़ा पेचीदा है। दोष चाहे आपकी बेटी का हो न हो, चूंकि दुर्घटना में घोड़ी की टांग टूट चुकी है और इस समय उसकी जो नाज़ुक अवस्था है उससे यही आशंका हो रही है कि वह बचेगी नहीं...घंटे-डेढ़ घंटे भले और खींच ले। यानी नुकसान तांगेवाले का ही हुआ!

“और उसकी रिपोर्ट पर हमें लड़की को गिरफ़्तार करना ही पड़ेगा। कोई समस्या नहीं है, उसमें काग़ज़ी कार्यवाही होगी। चाहें तो अभी ही गाड़ी और बच्ची को घर ले जा सकते

हैं। घर पर आदमी पहुंच जाएगा आपके, और जमानत हो जाएगी कि कार प्राप्त की और छोड़ दी, यह भी कि कार चलाने वाली लड़की को गिरफ़्तार किया और जमानत पर छोड़ दिया।"

"हां, न्यायालय इसे जाना ही पड़ेगा।" अपना वाक्य पूरा करते हुए मि. गहलोत ने साभिप्राय शीना की ओर देखा।

उनकी बात सुन मि. तिवारी चिंतित हो आए। कुछ सोचते हुए-से बोले, "ऐसा नहीं हो सकता गहलोत साहब, कि शीना को न्यायालय न जाना पड़े?"

"न्यायालय तो जाना ही पड़ेगा।"

"मान लीजिए, मामला कुछ इस तरह से बना दिया जाए कि शीना की जगह मैं गाड़ी चला रहा था?"

मि. गहलोत मि. तिवारी का आशय भांप गए। प्रतिक्रिया में अर्थपूर्ण मुस्कान मुस्कराए —"रिपोर्ट नहीं बदल सकती।"

"परेशानी आप समझ रहे हैं न, लड़की का मामला है! कोई अन्य गुंजाइश जिससे शीना को कोर्ट-कचहरी के चक्करों से मुक्त रखा जा सके?"

"मैं आपकी परेशानी समझ रहा हूं...गुंजाइश सिर्फ़ एक है।"

"बताइए..."

"तांगेवाला बच्ची के विरुद्ध दर्ज कराई गई रिपोर्ट वापस ले ले।"

"संभव है...?"

"दोनों पक्ष कोई निजी समझौता कर लें, संभव हो जाएगा।"

मि. तिवारी विचारमग्न हो उठे। शीना की ग़लती भले ही न हो, लेकिन सच्चाई यही है कि तांगेवाले की घोड़ी की टांग टूट चुकी है और किसी भी क्षण वह दम तोड़ सकती है। न भी मरे तब भी वह तांगे में जुतने से रही। नुकसान उसका हुआ ही है। निजी समझौते का अर्थ होगा—लेन-देन। यही उचित होगा कि मामला यहीं सुलट जाए। दिल के मरीज़ ठहरे, कोर्ट-कचहरी उनके वश की भी नहीं। समय और पैसा—दोनों ही नष्ट होंगे। शीना को मानसिक क्लेश पहुंचेगा। आत्मविश्वास डिगेगा, सो अलग।

"निजी समझौते की गुंजाइश बता रहे हैं न आप? करवा दीजिए गहलोत साहब, कृपा होगी।"

"देखिए तिवारी जी, यह हम नहीं करवा सकते। हमारा हस्तक्षेप दबाव माना जा सकता है। आप दोनों पक्ष एक ओर जाकर आपस में बात कर लें और जो भी तय करें, हमें आकर बता दें। तांगेवाले को मैं बुलवाए दे रहा हूं।" उन्होंने एक हवलदार बिशन सिंह को आवाज़ देकर बाहर बरामदे में बैठे हुए तांगेवाले को उनके कमरे में भेज देने के लिए कहा।

उसके आते ही उससे बोले, "असलम मियां, तिवारी साहब आप से अकेले में कुछ बातें करना चाहते हैं..."

“मेहरबानी सरकार! ग़रीब घर से बेघर हो गया, सरकार पूरे आठ हज़ार नौचंदी के मेले में गिने थे अपनी घोड़ी के लिए, मैं लुट...” लपककर असलम ने गहलोत साहब के पांव धर लिए।

“अबे, यह नौटंकी बंद कर! जो साहब कह रहे हैं उसे गौर से सुन।” हवलदार बिशन सिंह ने असलम को डपटा।

“ऐसा है, रिपोर्ट तुम्हारी लिख ली गई है। अब जो होना होगा, न्यायालय में ही होगा। वैसे तिवारीजी का कहना है कि कोर्ट-कचहरी के चक्कर में दोनों ही पक्ष परेशान होंगे, तो तुम्हें अगर उचित लगता है तो बात कर लो उनसे।” गहलोत साहब ने बड़ी चतुराई से तांगेवाले पर अपनी मंशा अप्रकट रहने देते हुए भी दबाव का पेपरवेट रख दिया।

“अंधा क्या मांगे, दो आंखें! सरकार, घोड़ी मेरी नहीं बचेगी। बस, घोड़ी की क़ीमत दिलवा दीजिए, साहब...” तांगेवाला पुनः गहलोत साहब के पांवों की ओर बढ़ा।

“नहीं बचेगी तो क्या करें? सड़क अपने बाप की समझ के क्यूं चलता है बे? हैं! हरामज़ादे, तेरी नस-नस से वाक़िफ़ हैं हम! औक़ात में रह अपनी।” हवलदार बिशन सिंह ने असलम के कमान हुए शरीर को गर्दन से दबोचकर सीधा किया।

“चल बाहर...”

असलम के मुड़ते ही गहलोत साहब ने मि. तिवारी से उठने का संकेत किया।

मि. तिवारी कमरे से बाहर आकर खुले बरामदे में दाहिने कोने में दिखाई दिए हवलदार और तांगेवाले की ओर बढ़ गए। वह तांगेवाले के अधिक मुंह नहीं लगना चाह रहे थे। हवलदार बिशनसिंह को उन्होंने एक ओर बुलाकर उससे कुछ कहा और फिर उसकी मुट्ठी में कुछ दबा दिया।

“देखो असलम मियां, ग़लती चाहे मेरी बेटी की हो या तुम्हारी, अगर हम अभी ही मामला सुलझा लें तो दोनों लोग कचहरी के झंझटों से मुक्त रहेंगे। मैं चाहता हूं कि तुम कुछ पैसे लेकर इसी समय मेरी बेटी के ख़िलाफ़ लिखाई गई अपनी रिपोर्ट वापस ले लो...”

“ले लूंगा सरकार, ले लूंगा।” असलम जाल में फंसे पक्षी-सा तड़फड़ाया। हवलदार बिशनसिंह उसके सिर पर ही खड़ा हुआ था।

“अब बताओ, क्या उम्मीद रखते हो तुम हमसे?”

“सरकार, आप बड़े लोग हैं, समझदार हैं। बिना घोड़ी हमारी रोज़ी-रोटी नहीं चलेगी। आठ-दस हज़ार से कम में आजकल बूढ़ी घोड़ी भी हाथ नहीं लगती।”

“आठ हज़ार चाहिए, हांऽऽ।” तड़ाक से एक चांटा हवलदार बिशन सिंह ने उसकी कनपटी पर रसीद कर दिया—“एक तो ग़लती तेरी, ऊपर से दिमाग सातवें आसमान पर! सोच-समझ के मुंह फाड़!”

“कमाल करते हो सरकार, जिसका सब लुट चुका वह क्या दिमाग सातवें आसमान पर रखेगा...?” असलम की आंखों में आंसू भर आए।

“तड़ाक!” उसकी दूसरी कनपटी भी झन्ना उठी, “पट्टी पढ़ा रहा है माऽऽ...गाड़ी देखी, लड़की देखी, फैल गये सड़क पे कि रत्ती-भर भी खरोंच लग गई कहीं तो बड़े आराम से कुछ न कुछ लपक ही लोगे, हैंऽ? अब तिकड़म अपनी ही ग...तो ततैया हो रहा है सालेऽ...?”

“नहीं, सरकार, नहीं...”

“नहीं तो फिर सुरसा का मुंह क्यों हो रहा? जानता नहीं, यहां फिर भी कुछ न कुछ हाथ लग जाएगा, कचहरी में कहीं मामला पलट गया तो बैठे रहना टापते। सीधे-सीधे बोल जो वाजिब बनता है तेरा।”

“क्या बोलूं सरकार, आपका राज है। जो जी में आये, दिलवा दें।”

“जो जी में आए दिलवा दें, मतलब? ताकि तू यहां से बाहर निकलते ही सवार हो जाए हमारी खोपड़ी पर कि जो मिला है वो हमने दिलवाया! हैंऽ। मक्करा मत, समझे?”

“पांच दिलवा दीजिए हुज़ूर! और कुछ नहीं, अधमरी घोड़ी ही ख़रीद सकूं... बच्चों के पेट में कम-से-कम एक जून की तो पड़े।”

“आ रहा है ठिकाने तू...” हवलदार बिशन सिंह निकट खड़े हुए मि.तिवारी की ओर उन्मुख हुआ—“सर आप इसे दो दे दीजिए, इससे कम में नहीं टलेगा यह ... हवलदार लतीफ ने अभी-अभी ख़बर दी है कि घोड़ी ठंडी हो गई इसकी।”

“देखो भई, दो से ज़्यादा मैं नहीं कर सकूंगा! न मंज़ूर हो तो फिर कचहरी में मिलेंगे।” घोड़ी के मरने की सूचना ने मि. तिवारी को तनिक विचलित कर दिया। उन्होंने सोच लिया कि अगर दो पर तांगेवाला राज़ी नहीं हुआ तो वह उसे तीन तक दे देंगे। घोड़ी की मृत्यु से उनका केस और अधिक बिगड़ गया है।

“मंज़ूर है सरकार, मंज़ूर है... ग़रीब क्या खाकर कचहरी लड़ेगा आपसे?”

“चल बड़े साहब के पास...चलकर वापस ले रिपोर्ट अपनी।”

हवलदार बिशन सिंह थाना प्रभारी मि. गहलोत के कमरे की ओर बढ़ा। मितिवारी भी उसके संग मि. गहलोत के कमरे में दाख़िल हुए। उनके चेहरे पर अब तक तनी हुई उद्विग्नता फैसला होते ही काफ़ी कुछ ढीली हुई।

थाना प्रभारी मि. गहलोत ने सीधे तांगेवाले से प्रश्न किया—“क्या फ़ैसला किया तुमने, असलम मियां?”

“सरकार...”

“बोलो, निर्भय होकर बोलो।”

“सरकार, दो हज़ार रुपये बतौर हर्ज़ा देंगे साहब हमको।”

“यानी तुम लड़की के विरुद्ध लिखाई गई अपनी रिपोर्ट वापस ले रहे हो?”

“जी सरकार।”

“अपनी मर्ज़ी से?”

“जी सरकार।”

“ठीक है।” मि. गहलोत सामने बैठे हुए मि. तिवारी की ओर मुड़े—“बधाई हो! पैसे का इंतज़ाम है आपके पास?”

“कार्यालय से निकलने से पूर्व करके ही चला था,” मि. तिवारी जेब से अपना पर्स निकालने लगे।

“कुछ मेरे पास हैं भैया, दूं?” लड़की के साथ वाली महिला ने वितृष्णा-भाव से अपने बटुए को हाथ लगाया।

“नहीं, ज़रूरत नहीं, अर्चना...” मि. तिवारी ने उन्हें बरज दिया।

मि. गहलोत ने हवलदार बिशन सिंह को आदेश दिया कि दरोगा अजय मित्तल के पास तांगेवाले को ले जाकर उसकी रिपोर्ट के संदर्भ में एक निरस्त-पत्र लिखवा लें और इससे दस्तख़त करवा लें।

मि. गहलोत अब तक साहसी बैठी हुई शीना से उन्मुख हुए—“बेटी! गाड़ी ख़ूब चलाओ, धड़ल्ले से। मगर भीड़-भाड़ में ज़रा सावधानी के साथ, इन अंधों से तनिक बचकर...”

प्रत्युत्तर में शीना ने दृष्टि झुका ली।

मि. तिवारी ने लक्ष्य किया कि मि. गहलोत ने घोड़ी की मृत्यु की सूचना शीना को नहीं दी, शायद यही सोचकर कि कहीं ऐसा न हो कि सारे प्रकरण से घबराई हुई शीना और अधिक ग्लानि-बोध से त्रस्त हो जाए और उसका गाड़ी चलाने का आत्मविश्वास आहत हो। शायद इसीलिए मि. गहलोत ने कुछ देर पहले उनसे ही कहा कि वे स्वयं जाकर घटनास्थल से अपनी गाड़ी ले आएं और लाकर कोतवाली के भीतर खड़ी कर दें ताकि वापसी के समय वे लोग यहीं से सीधा घर के लिए निकल सकें। मि. तिवारी को शीना की लापरवाही पर क्रोध भी आ रहा था और उसके सहमे, उड़े चेहरे को देखकर हृदय व्यथित भी हो रहा था। कितनी बार मना किया है उसे कि कॉलोनी की बात अलग है, लेकिन शहर में गाड़ी न ले जाए। भीड़-भरे इलाक़ों में तो कतई नहीं। कुशल से कुशल चालक भी भीड़ में अपना नियंत्रण खो बैठते हैं। वह तो अभी बच्ची ही है। पिछले वर्ष ही तो उन्होंने उसकी ज़िद पर लाइसेंस बनवा के दिया है। इधर जब से उसकी बुआ अर्चना विदेश से आई है, उसे और भी शह मिल रही।

सारा काम निबट चुका था। मि. तिवारी ने उठते हुए गर्मजोशी से मि. गहलोत से हाथ मिलाया। सहयोग के लिए उन्हें धन्यवाद दिया। शीना से ‘नमस्ते’ भी नहीं कहा गया।

पुलिस चौकी से बाहर निकलते हुए उसके चेहरे से प्रतीत हो रहा था, जैसे वह सज़ा काटकर अभी ही जेल से मुक्त हुई हो।

आधी रात को किसी घोड़ी के हिनहिनाने का प्रखर स्वर सुनकर अचानक असलम की नींद उचट गई।

यह तो सरवरी के हिनहिनाने का स्वर है! रुन-झुन हिनहिनाहट से भरा हुआ स्वर!

हड़बड़ाया हुआ-सा उठकर वह कोठरी के किवाड़ खोल, उसे देखने बरामदे की ओर लपका। बाहर झींगुरों की झियांहट में डूबा हुआ आधी रात का गहरा अनमना सन्नाटा था और सरवरी के बिना अकेले उदास खड़ा हुआ तांगा। सरवरी कहां है? सरवरी यहां हो भी कैसे सकती है? उसे तो वह वहीं सड़क पर मुर्दा छोड़ आया था—नगरपालिका की बेजान लावारिस पशुओं की लाशें ढोने वाली गाड़ी के भरोसे। कितनी तेज़ी से वह तांगा लेकर भागा था घटनास्थल से।

तेज़ी से कोठरी में लौटकर वह बदहवास-सा न जाने अपने सिरहाने क्या खोजने-टटोलने लगा। किसी चीज़ के हाथ लगते ही उसे अपनी छाती से भींच, कलेजे में हूक के बवंडर-से उठते-घुमड़ते रुदन को दबाने की कोशिश में असफल होता हुआ वह इतनी ज़ोर से चिंघाड़ मारकर रोया कि लगा, जैसे कोई पेड़ अपने तने से कटकर अरराता हुआ धरती पर आ गिरा हो और उसकी कारुणिक अरराहट पलों तक दिशाओं में कांपती हुई ठहर गई हो।

“क्या हुआ अचानक तुमको...अल्लाह! कुछ बोलो भी...बोलो!” उसे आधी रात टूटकर रोता हुआ पाकर ज़ुबैदा हतप्रभ-सी उसे झकझोरने लगी। शोर से एकाध बच्चे की भी नींद टूट गई। कड़वाई हुई अबोध आंखों से वे रोते हुए बाप की ओर हैरत से देख रहे थे, इस हालत में पहली बार।

“कहीं दर्द हो रहा है? हौलनाक सपना देखा? बोलोगे नहीं तो मुझे पता कैसे चलेगा कि तुम्हें क्या तकलीफ़ है? सरवरी का ग़म सता रहा है तो सब्र करो...एक न एक दिन उसे हमसे जुदा होना ही था...”

“नहीं, वह जुदा नहीं हुई, उसके जुदा होने से पहले ही मैंने उसे मार दिया। मैंने उसकी मौत से सौदा कर लिया, बीबी! जान-बूझकर उसे गाड़ी से भेड़ दिया! यही सोचकर कि अपनी मौत तो वह मरेगी ही, आगे-पीछे किसी गाड़ी से भेड़ दूंगा तो वह मरते-मरते अपनी क़ीमत अदा कर जाएगी...ये नोट, नोट नहीं, मरी सरवरी की बोटियां हैं...बोटियां, बीबी...”

सुनकर ज़ुबैदा का दिल दहल उठा। असलम की पीठ सहलाता हुआ उसका हाथ जहां का तहां रुक गया।

आँगन की चिड़िया

कुइयाँ के थिर जल से टकराई कलसी-सा भकभकाया जी डूबने को हो रहा... भक्क्, भक्क्, भक्क्...

कार्तिक पूर्णिमा का नहान अभी शेष है। मगर उतरती दोपहरी अचानक अररातेघटाटोप से सँवलाई कसैली मनहूसियत छींटती, दबे पाँव घर में दाखिल हो चुकी है।

ऋतुएँ भी छुट्टाछोर सी जब चाहें भेस बदल लेती हैं कि आँखें आसमान से टिका उनकी नब्ज़ ढूँढ़ते रहो। ऐसे रंग बदलते महीने उन्होंने पहले तो न देखे थे!...

बिजली का बिल भरने जाना था, सो यही कहकर घर से गए हैं पाठक जी, कि वापसी में नया बाज़ार, मोहरकर की गली में मेजर अवताड़े के घर से होते हुए आएँगे। दो-चार बाज़ी उनके संग जमाएँगे ब्रिज की। कैंटीन से सामान मँगाने वाली लिस्ट जो बनाई है उन्होंने, उसे भी मेजर साहब को पकड़ाते आएँगे। कैंटीन में ज़रूरत की चीज़ें किफ़ायती दामों पर मिल जाती हैं। अवकाश प्राप्ति के साथ ही यह सब भी सोचना पड़ रहा है। वैसे छठा पे कमीशन आ रहा है। लागू होते ही हाथ सिकोड़ने से ख़ासी राहत मिलेगी। पाठक जी उत्साह से भरे हुए हैं। गुणा-भाग में लगे रहते हैं। जब से लागू होगा, पिछले बकाए की तगड़ी रकम हाथ आएगी। दीवू के ब्याह की, लगुन की चिन्ता से मुक्त हैं।

पाठक जी के घर से निकलते ही दीवू यानी उनकी दिव्या का फोन आया था गुड़गाँव से।

स्वर उलझन में डूबा हुआ-सा महसूस हुआ और बोल असमंजस-से घिरे हुए।

कह रही थी कि जिन तीन लड़कियों के साथ वह साझे का फ्लैट लेकर रह रही है, उनके साथ अब उसका निबाह सम्भव नहीं। देखा नहीं था उन्होंने आने पर उन कामचोरों को? “कल रात तो हद ही कर दी थी शांभवी ने। ...मैं, मैं क्यों उसकी ऐश-ट्रे से सिगरेट के टोटे और राख झाड़ती फिरूँ? क्यों सहूँ उसकी ज़्यादतियाँ? क्यों, क्यों झेलूँ उसके ऐब!... छह हज़ार अपने हिस्से का दे रही हूँ हर महीने, दस हज़ार और मिलाकर अपना अलग घर न ले लूँ?”

दीवू के उखड़ेपन ने उन्हें सतर्क किया। दबी ज़बान से उन्होंने अपनी असहमति दर्ज करवाई, “अकेले रहने और तीन के संग-साथ रहने में फर्क है, दीवू! रही ऐब की बात, तो

सुन लो, जब चार जने मिलकर रहते हैं तो उन्हें एक-दूसरे के छोटे-मोटे ऐब झेलने ही पड़ते हैं। हमने भी झेले हैं। जब मैं इलाहाबाद में पढ़ रही थी और हॉस्टल में रह रही थी, तो मेरी रूम पार्टनर थी, बानी। बानी को पान खाने का शौक था। पान और पनडिब्बे भर का ही शौक होता तब भी गनीमत थी। एक सौ बीस नम्बर तम्बाकू के ऊपर लगाती थी राजरतन किमाम! सिरहाना से लेकर ओढ़ने वाली चादरों तक में किमाम गमकता रहता। मैं परेशान। हफ्तों अगरबत्ती के पैकेट फूँक डाले। कमरा बदलवाने की धमकी दी। हाँ, पढ़ाई में अव्वल थी बानी। हारकर बानी के ऐब के साथ रहने की आदत डाल ली!"

"तुम और कर ही क्या सकती थी, माँ! बाहर किराए का मकान लेकर रहना तुम्हारे लिए सम्भव नहीं था। नाना जी की हैसियत भी तो नहीं थी।"

माँ सनाका खा गई, "यह कैसी भाषा बोल रही हो तुम...?"

"रात वह चुड़ैल मेरे बिस्तर में घुस आई... घुसने की कोशिश उसने पहले भी की थी...।"

फोन काट दिया गया। अकबकायी-सी वह कुछ समझ नहीं पाई। कुछ देर तक उसके फोन के दुबारा आने का इन्तज़ार करती रही। रोज़ वही फोन करती है। कट जाने के बाद या काट दिए जाने के बाद भी वही दुबारा मिलाती है। कह रखा है उसने। दफ्तर ने उसे मोबाइल दे रखा है।

इतनी हिम्मत कैसे कर सकती है शाम्भवी!

"जब तक आण्टी है घर में, बाज़ार से मछली नहीं आएगी।"

बंगाली लड़की के लिए मछली और भात के बिना खाना खा पाना सम्भव नहीं। उन्होंने समझाने की कोशिश की थी, शाम्भवी को। वे लोग निश्चय ही घोर शाकाहारी हैं खान-पान में। मगर कोई उनके साथ बैठकर जो चाहे सो खाए, उन्हें कोई आपत्ति नहीं!

सिगरेट भी शाम्भवी को कभी अपने सामने पीते हुए नहीं देखा। अलबत्ता खूबसूरत-सी ऐश-ट्रे उसके कमरे में रखी हुई अवश्य देखी थी उन्होंने।

तब यही महसूस किया था। घर की टूटन से छीजी हुई बच्ची है। महानगर का अकेलापन कब कौन-सा रूप धर लत-सा चिपक जाएगा, कहना मुश्किल है।

रही बात दीवू की, तो उनकी और पाठक जी की निरन्तर यही कोशिश बनी हुई है कि वे दोनों अपनी इकलौती सन्तान को ग्वालियर और दिल्ली की दूरी कभी महसूस नहीं होने दें। आई.एम.टी. गाजियाबाद से एम.ए.; एम.बी.ए. कर रही थी तब भी उनकी भाग-दौड़ बदस्तूर जारी थी। मायके और ससुराल वालों ने यहाँ तक चेतावनी दे डाली, "बच्ची को अकेले दिल्ली क्यों भेज रहे हो? नौकरी वहीं करवानी है तो यहाँ की रिहाइश छोड़ दिल्ली ही मकान क्यों नहीं खरीद लेते? अनिरुद्ध तो अब रहा नहीं!..."

...किस-किस से तर्क-वितर्क करते और बताते कि बेटे के लिए बुने गए सपने भी अब, बच्ची की उठान में सलमे-से टँक गए हैं! वैसे भी वे लोग जीवनभर दीवू के संग चिपके रहने से रहे। ग्वालियर क्यों छोड़ें? चार कदम है बाज़ार और अटारी की मुँडेर लाँघ भर भरे हैं

अपने। गुहार लगाओ कि भरभरा कर देहरी पर सब हाज़िर।

पलटकर फोन नहीं आया दीवू का, तो उन्होंने स्वयं फोन कर लेना मुनासिब समझा। टेक पाने के लिए आँधर-सा दीवार टटोल रहा है मन...

“हाँऽऽऽ माँ! बोलो!...” व्यस्त भाव ने टोह दी। घिरी हुई है शायद दीवू।

उन्हें कौन-सी लम्बी बात करनी है। सींक से उठा कनखजूरे को उनकी ओर उसने ही तो उछाला है!

“सुन, तूने जो कहा, गलतफहमी भी तो हो सकती है तेरी?”

“गलतफहमी!...”

“माने, सहेली के संग गलबहियाँ डाल के सोया नहीं जा सकता?”

उनकी नादानी पर तरस खाती ‘चप्प’-सी ध्वनि उनके कान में सरकी।

“छोड़ो माँ, अब इतनी भी नादान नहीं मैं कि... मकसद न भाँप सकूँ।”

छत्तीस साल पुराना है उनके निवाड़ के पलंग का गद्दा। ब्याह के समय धुनकवा के भरवाया गया था। रूई गठिया रही। धुनकवाना ज़रूरी है। कब से टल रहा है मामला। खोल के लिए मोटा पटरी वाला कपड़ा खरीदना होगा तब ही तो धुनकवाया जा सकेगा गद्दा।

उनकी तरफ कुछ अधिक ही पठारी हो रहा। पीठ में दर्द उठने लगता है। वैसे गद्दा इतना भी बुरा नहीं जितना अभी चुभ रहा है। कल दोपहर चैन की नींद सोई थीं इसी गद्दे पर।

...

बिस्तर से उठकर बिजली का स्विच ऑन कर दिया। अँधेरा रात के अलावा बरदाश्त नहीं उन्हें।... बाहर बरामदे में आकर खड़ी हो गईं। कहीं बूँदा-बाँदी न शुरू हो जाए। आसार तो कब से डराए हुए हैं। भीतर मुड़ने को हुई मगर अगले ही पल पलटकर रेलिंग से आ टिकीं। रेलिंग हिलाने से हिलती है। ठोका-ठोकी से दुरुस्त नहीं होने वाली। नए सिरे से उखड़वाकर लगवानी होगी। अभी इधर ही ढीली हो आई है। अनिरुद्ध और दीवू छुटपन में इसी पर घुड़सवारी किया करते थे।

“चलो, कुलक्षनों से दूर है, दीवू!” अपने को सुनाया उन्होंने। उनके बेचैन होने से क्या होगा! अपनी परेशानियों का समाधान बच्चे अब स्वयं खोजने लगे हैं। समझना तो बड़ों को है। ज़रूरत न होते हुए भी अपनी परेशानियों का गुणा-भाग क्यों करते रहते हैं! अनमनाहट को घोंटना होगा। आएँगे जब आएँगे पाठक जी। अपने लिए तो वह चाय चढ़ा ही दें। बुरी आदत है पाठक जी की। मोबाइल जेब में रखने के लिए तैयार नहीं होते। दीवू ने जबरन ख़रीदवा दिया है, तब भी। वही पर्स में डाले घूमती हैं।

भरोसा नहीं पाठक जी का। आते ही पकौड़ों की फरमाइश न कर दें। घिरे-कसैले मौसम में उन्हें अकसर पकौड़ों की सूझती है। बाप की तरह दीवू भी है पकौड़ों की शौकीन। शिकायत करती है। दिल्ली में बेसन फेंटने की ज़हमत नहीं उठाते लोग। सोडा डालकर पकौड़े तल लेते हैं। उसे फिटे बेसन के पकौड़े पसन्द हैं।

दिल्ली में भी घटाटोप छाया हुआ होगा क्या!

डेढ़ महीने बाद दीवू ने उन्हें मोबाइल पर सूचित किया।

उसी कॉलोनी से लगी दूसरी कॉलोनी में उसने दो शयन कक्षों वाला एक छोटा-सा फ्लैट किराए पर ले लिया है। अग्रिम दे चुकी है वह।

किराए की रकम अठारह हज़ार प्रतिमाह सुनकर उनके मुँह के बोल चुक गए।

महीने भर पहले उसने इत्तिला दी थी उन्हें कि उसने पुराने मकान मालिक को सूचित कर दिया है कि वह इस व्यवस्था में रहने की इच्छुक नहीं है अब। चौथी लड़की बतौर किराएदार वह चाहें तो स्वयं तलाश लें या उन तीनों के ज़िम्मे छोड़ दें, वह जानें। परेशानी यह थी कि मकान उसे 'इफ़्को' चौक के आस-पास ही चाहिए था। दफ्तर की गाड़ी सुबह वहीं से उसे लेती है और वापसी में वहीं उतार देती है, दो अन्य सहयोगियों के साथ।

"फिर... उद्दंडता तो नहीं की शाम्भवी ने?" पूछे बिना नहीं रह पाई थीं उससे।

"सबक सीखने से डर गई होगी।"

"कैसा सबक?"

"वही जो मैं सिखाती उसे।"

"जाने क्यों परसों लगा था ऐसा कि 'हैलो' के बाद कट गया फोन शाम्भवी का था..."

"हो सकता है उसी ने किया हो; अभी, परसों ही तो उसने कहा था घर से निकलने से पहले, आण्टी की याद आ रही है।"

"मन में आया था कि फोन कर लूँ उसे..."

"माँऽऽ, क्यों बात करोगी उससे? इडियट प्रपंची है!"

तर्क मुखर होने से पहले पाया, उस ओर दीवू है ही नहीं। उसकी इस आदत से उन्हें तकलीफ पहुँचती है। "किसी के सामने आने पर फोन बन्द कर देना और उसकी न सुनना और बात है, किन्तु अपनी टिप्पणी के विरुद्ध तर्कों का सामना करने से मुँह मोड़ना, उद्दंडता।"

"उद्दंडता कैसी?" पाठक जी सुनकर हँस पड़े थे। कन्नी काटने वाली हँसी।

"सयानी हो गई है बच्ची, सीखों के पुलिन्दे पकड़ाना बन्द करो। शाम्भवी को प्रपंची कह रही है तो लगी होगी उसे प्रपंची।"

"मुझे तो नहीं लगी..."

"तब नहीं रही होगी, अब हो गई होगी।"

खीझ हो आई उन्हें! समझ नहीं रहे। स्वर उग्र हो आया, "चार बच्चों की माँ तक दिल्ली में अकेले घर से निकलने में डरती है। ऊपर से यह ज़िद्दन मानने को तैयार नहीं। साथ नहीं रहना उन लड़कियों के तो न रहे। पेइंग गेस्ट रह ले किसी भले घर में!"

“नहीं झेलना होगा उसे औरों को। उसकी मर्ज़ी! उसका सोचना गलत भी नहीं लग रहा कि हम लोग आते-जाते रहेंगे उसके पास।”

“वह तो अब भी आते-जाते रहते हैं।”

“अब और तब में फर्क होगा न! तब हम जब तक जी चाहे; बेटी के पास रह सकते हैं।”

...उन्हें याद आया।

एम.बी.ए. पास करते ही हॉस्टल से सामान उठाया नहीं था कि सूचना मिली कि एक अमरीकन सॉफ्टवेयर कम्पनी में दीवू की साढ़े तीन लाख रुपये सालाना की नौकरी लग गई है। हालाँकि साल भर का प्रोबेशन पीरियड है। पाठक जी के पर लग गए।

दिन भर डायरी खोले बैठे रिश्तेदारों और अज़ीज़ों को फोन लगाते रहे अपना छलछलाता गर्व बाँटने के लिए। गर्व में ऊभ-चूभ होते सभी से कह रहे थे, “भाई साहब, लड़का दीवू से इक्कीस हो तभी बताएँ हमें।”

दूसरे रोज़ नया बाज़ार में चौक पर स्थित ‘हनुमान लड्डू भण्डार’ से असली घी के आधा-आधा किलो के डिब्बे तुलवाए गए और चिलचिलाती धूप की परवाह न कर रिक्शे में लद कम्पू तक बँटे।

उनके लिए विशेष रूप से गरमागरम तुलवा लाए दीवू की पसंद के बरई वाले गुलाब जामुन। विशेष छूट चाही अपने खाने के लिए। उन्होंने हँसते हुए छूट दे दी। पानी में धोकर खा सकते हैं। पिछले हफ्ते ही पाठक जी की मधुमेह की जाँच करवाई थी। नाश्ते से पहले और तगड़े नाश्ते के बाद। आश्वस्ति हुई। रक्त में चीनी नियंत्रण में थी।

पलटकर तसल्ली थमाई ख़ुद को। अठारह हज़ार कौन ज़्यादा है दीवू के लिए। दीवू का ख़र्च सुनते ही बिरझा उठती हैं मानो स्वयं उनके पाँव चादर से झाँकने लगे हो। अपने को खूँद रही हैं तो यह भी महसूस हो रहा है इन ऊपरी बातों के बहाने असल में निरन्तर चुभ रही है —उसके अकेले रहने की ज़िद।

दीवू ने आगे यह भी बताया कि उसके लिए यह प्यारा-सा फ्लैट तलाश करने में उसके आई.एम.टी. के सहपाठी विकी यानी कि विवेक साहनी ने बहुत मदद की वरना दलालों के चक्कर खासी मुसीबत होते हैं। विकी भी गुड़गाँव में ही एक जर्मन फर्म में है। प्रोबेशन पीरियड पूरा कर चुका है। पैकेज विकी का उसके अनुबन्ध से कम है।

“उसके बारे में तुम्हें बताया था न, माँ!”

उन्होंने दिमाग पर ज़ोर देकर याद करने की कोशिश की। कब दीवू ने उन्हें विकी उर्फ विवेक साहनी के विषय में बताया था! भूलने की बीमारी उन्हें नहीं, पाठक जी को ज़रूर है। उनके प्रसन्न रहने का राज़ भी शायद यही है।

“पिछली बार दिल्ली आने पर विकी से मिलवाया क्यों नहीं?” आवाज़ के उखड़ेपन को भरसक दबाने की कोशिश की थी उन्होंने।

दरदरी हँसी खनकी थी, “डर लगा था।”

“किस बात से?”

“तुम मुझे उन भूतनियों जैसा न समझ लो।”

“अब नहीं समझ सकती?”

“समझने जैसा ऐसा कुछ नहीं है हमारे बीच!!”

“फिर, डर क्यों लगा?...”

हमेशा की भाँति वह छलाँग भर उनकी पकड़ से छू हो गई, “सुनिए माँ, पापा हैं न पास, तनिक उन्हें फोन दीजिए।”

पाठक जी को फोन नहीं पकड़ाया तो फोन रख दिया जाएगा। गनीमत है, डर है लड़की को! डर का नैतिकता से गहरा ताल्लुक है। जब भी उसे डरा हुआ देखती हैं, आश्वस्ति से भर उठती हैं। मोबाइल कान से सटा पाठक जी चौखट से बाहर हो बरामदे में टहलने लगे। रसोई में पलट वे प्लेटफॉर्म की बिखराहट सरियाने लगीं। बर्तन आहिस्ता समेटती हैं। टकराने की झन्नाहट उन्हें खटकती है। बर्तनों की टकराहट को सास घर की अशान्ति से जोड़ती थीं और बरकत में रोड़ा।

काम निपटाते हाथ उलझे हुए ज़रूर हैं मगर भीतर चंबल का बीहड़ भाँय-भाँय करता उग आया...

प्लेटफॉर्म पोंछते पोछे को वह बुलडोज़र में बदलने की कोशिश करती है। उगते डूँह कद काढ़े, इससे पहले ढहा उन्हें समतल कर देना चाहती हैं। न चाहते हुए भी क्यों दाखिल हो जाता बीहड़ उनके भीतर! डर कौन रहा है? छोटे में दीवू डरकर सच बोलने लगती थी और अनिरुद्ध झूठ। दबिश बढ़ते ही अनिरुद्ध को भी पटरी पर आते समय नहीं लगता था। बच्चों को डराकर शायद वह स्वयं भयमुक्त होना चाहती थी। डर उन्हें अनावश्यक भी तो डराता रहता है बर्रईयों-सा उनके भीतर भिनकता... भूऊँऊऽऽऽ...

दीवू ने नहीं किया मनुहार इस बार कि माँ, तुम्हारे आए बिना गृहप्रवेश कैसे करूँगी! पापा और तुम अगले हफ्ते का दिल्ली का टिकट आरक्षित करवा लो। घर सुव्यवस्थित कौन करेगा। मुझे कहाँ समय है। चुड़ैलों वाले इस घर की सारी ज़रूरत की चीज़ें तुम देख ही गई हो कि मकान मालिक ने दे रखी हैं।

हो सकता है, पाठक जी से इस बाबत बात की हो उसने। पूछने पर पाठक जी ने इनकार में सिर हिला दिया, “हमें तो चिबिल्ली सन्ता-बन्ता के जोक्स सुना रही थी। कुछ नए जोक्स एस.एम.एस. करेगी। कह रही थी कि पापा, उन्हें मैं सुना नहीं सकती...।”

अनमनाहट में पत्नी का नमकीन लम्बा चेहरा सूखी बेल पर लटकी तुरई-सा लटक आता है। अनमनाहट साड़ी-सी हरदम लपेटे रहने की आदत इधर कुछ ज़्यादा ही बढ़ गई उनमें।

पाठक जी ने स्वर में धैर्य की माया बढ़ाई, “भई, दीवू ने नहीं कहा आने के लिए तो खुद

क्यों नहीं कह देती कि मैं दिल्ली आ रही हूँ?" आगे जोड़ा उन्होंने। उनके कुछ बोलने की उतावली को खामोश रहने पर विवश करते हुए, "यह भी कह रही थी मुन्नो, पापा अपना और मम्मी का पासपोर्ट बनवा लें। भोपाल जाना पड़े तो हो आएँ। (लाड़ में पाठक जी दीवू को अनेक सम्बोधनों से पुकारते हैं)

पाँचवें रोज़ फोन पर वह उन्हें कुछ फुरसत में लगी जबकि हैलो, हाय लगभग रोज़ ही होती रहती है।

"सुन दीवू, मैं आती हूँ... नए घर की जमा-जमायी अकेले तेरे बूते की नहीं।" उन्होंने यह भी बता दिया कि उसके कहे मुताबिक मखमल की डबल बेड की रजाई का फर्द लेकर भरवा लिया है उन्होंने। रंग भी उसकी पसंद का मिल गया है। लोहिया बाज़ार से लोहे की छोटी कड़ाही और तवा भी वजनदार ले आई हैं। टेंटी का किलो भर अचार उसके पापा ले आए हैं। परात, पतीले, आटा, दाल, चावल के डिब्बे, मिर्च-मसाले, पापड़, मंगोड़ी, बड़ी और नया बाज़ार से क्रॉस स्टिच वाली चादर, तकिए के खोल आदि सब जोड़ लिए हैं। अन्य किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो फोन पर नोट करवा दें उन्हें। साथ आ जाएगा। टिकट ताज से ही बुक करवाएँगी। शताब्दी से इतना सामान आना मुश्किल है।..." रुकना पड़ा उन्हें।

दीवू ने सकुचाते हुए उन्हें बीच में टोका, "अभी थोड़ा रुक जाएँ।" कारण? कारण ही तो गले का फन्दा हो रहा है। भयंकर मारामारी है। घर की रँगाई-पुताई होनी है। अगले हफ्ते वह एक अन्य विदेशी कम्पनी ज्वॉइन करने जा रही है। साढ़े बारह लाख साल की पैकेज डील हुई है। पिछली कम्पनी उसने पिछले महीने ही छोड़ दी थी। उन्हें और पापा को नहीं बताया तो सिर्फ यही सोचकर कि ख़ामख़ाह उनके चैन में खलल क्यों डाले। नई कम्पनी जे. जे. जे. को ज्वॉइन करते ही उसे फौरन जेनेवा जाना है कम्पनी की एक प्रशिक्षण योजना के तहत। जेनेवा से सवा महीने बाद लौटना होगा। इसी बीच वीज़ा आदि की औपचारिकताएँ पूरी होनी हैं। आने की कोशिश होगी उसकी ग्वालियर, लेकिन गुंजाइश निकलती नहीं दिख रही। उसके जेनेवा से लौट आने पर ही दिल्ली आने का कार्यक्रम बनाएँ। सम्भव है, तब तक लोन आदि का प्रबन्ध कर वह अपनी गाड़ी ख़रीद ले। गाड़ी के बिना दिल्ली में आवाजाही कठिन है।...

गाड़ी चलाना सीख रही है। बाकायदा ड्राइविंग स्कूल ज्वॉइन किया हुआ है। पापा से ज़िक्र न करें। उन्हें चौंका देना चाहती है स्टेशन से घर ले जाकर।

उन लोगों की कमी उठते-बैठते निरन्तर महसूस हो रही है। छोटा शहर अकेला नहीं करता। बड़ा निगल लेता है...

कल रात उनकी और पापा की इतनी ज़ोर से याद आई, उनकी गोद की हुड़क जो मचती है!...

जेनेवा जाने से पहले फोन कर उनका आशीर्वाद लेगी। एयरपोर्ट से उन्हें फोन करेगी।

...अब उससे यह न कहने लगें कि वह ग्वालियर से उसके रास्ते के लिए खस्ता बनाकर भेज रही हैं... कोई आनेवाला न मिला तो कूरियर से सुरक्षित भिजवाने का जतन करेंगी।

माँ, क्यूँ याद आ रही हो इस वक़्त इतनी ज़्यादा...!

सुनते ही भड़भड़ाया मन आँखों में उमड़ आया। हास्यास्पद लगने वाले उसके पापा के तमाम सम्बोधन उसे पुकारने के—पिघलने को बेचैन हो आए उनके होंठों पर। मुन्ना, मोंटू, मोरी बिल्लरियाँ, चुनमुन, पुत्री, पिड़कुल, पीपीलिका बन्दरिया, गुलबुल और बछिया...

सिर पर भरे बादलों-सा वक़्त गुज़रने लगा। वक़्त बहने के लिए ही तो होता है। ऐसे बहता है कि कब उम्र गुज़र गई, अन्दाज़ा ही नहीं लगता।

जेनेवा से प्रशिक्षण लेकर लौटी दीवू हांगकांग, ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका की यात्रा पर निकल गई।

पाठक जी बात होने पर अपनी बिल्लरिया को समझाते। नित्यप्रति सोने से पूर्व डायरी लिखना न भूले। अलग-अलग जगहों के अलग-अलग अलबम बनाना न भूले। यह करना न भूले, वह करना न भूले। उधर से 'हाँ पापा, हाँ पापा!' में ही जवाब मिलता रहा होगा। बिना सुने उन्हें अन्दाज़ा है।

पिछली किसी शाम पाठक जी हुलस के मित्र मेजर अवताड़े को फोन पर बता रहे थे। एक वे हैं कि एक ही शहर में घरघुस्सू-से बने हुए। कभी बाहर निकलने की ही नहीं सोची। ग्वालियर न छोड़ने के चक्कर में उन्होंने अपने कई महत्त्वपूर्ण तबादले भोपाल जाकर राजनीतिज्ञों के दरवाज़े खटखटाकर निरस्त करवाए, पदोन्नति का मोह छोड़। देश ही नहीं घूम पाए वह और उनकी दीवू का एक पाँव हवाई जहाज़ में ही बना रहता है!

शादी, हाँ उसकी शादी की चिन्ता बराबर बनी हुई है उन्हें। वे भी तो परिचित हैं उनके रायबरेली वाले बड़े मामा प्रोफेसर रामबचन तिवारी से। आई.ए.एस. में इसी साल चुन लिए गए सर्वेश मिश्रा के मामा के माध्यम से उन्होंने दीवू और सर्वेश के ब्याह और लेन-देन के सन्दर्भ में बात चलाई। तसवीरें माँगी गई थीं दीवू की तो अनुराधा ने भेज दी हैं बड़े मामा जी को। बात लड़का-लड़की की पसंद पर टिकी हुई है।

"न, न, न, आप ठीक कह रहे हैं मेजर साहब! पसंद के बावजूद टीम-टाम में लाखों ढीले करने पड़ सकते हैं!"

"हाँऽऽ हमने भी तय कर लिया, कौन दो-चार औलादों को लग्गे लगाना है हमें। ले-देकर एक दीवू ही तो है!"

कपड़े तहा अलमारी में सरियाते हुए चिहुँककर खयाल आया, गैस पर चाय का पानी चढ़ाकर आई थीं। काम से हाथ खींच दौड़ी तो पाया, पतीले की पेंदी अंगारा हो रही है।

अलमारी जब-जब कपड़े रखने निकालने के लिए खोलती हैं—बीच के कोने में हैंगर पर टँगे अनिरुद्ध के स्कूल के कोट को छूना नहीं भूलतीं। पलटीं और शेष कपड़ों को यथास्थान पर रख कोट को छूने लगीं।...

उसाँस गहरा आई...। कितना रुके और? रुका जाए तब न! मुँह देखे बिना सब्र नहीं

बँधता जैसे विदा कर दिया हो दीवू को।

मकर संक्रांति से पहले ही अड़ गईं। खिचड़ी वहीं बनाएँगी और यहाँ निकालकर रख जाएँगी ताकि पाठक जी हाथ लगाकर भिजवा दें नया बाज़ार द्विवेदी पण्डित जी के घर।

मोबाइल पर दीवू को सूचित कर दिया। बारह जनवरी की ताज से वह दिल्ली आने की टिकट बुक कराने जा रही हैं। कोई हील-हुज्जत नहीं सुननी उन्हें। काम-धन्धे की व्यस्तता सभी पर लदी होती है। उसके बाहर आने-जाने से उन्हें क्या दिक्कत? घर है न रहने के लिए।

पाठक जी ने पहले ही साथ चलने से मना कर दिया था। पेडू पर हार्निया गुमटे-सा बाहर निकल आया है। बाड़े के डॉक्टर मित्तल से निरन्तर परामर्श कर रहे हैं। हार्निया के लिए बने विशेष बेल्ट को उन्होंने बाँधे रखने का सुझाव दिया है। दर्द मामूली-सा उठता है। उनके लौटने तक ऑपरेशन टालेंगे। प्रोस्टेट की नई समस्या शुरू हो गई है। दीवू से उनके कष्ट का रोना न रोएँ। समय पर बताना ज़रूरी होगा तब बता दिया जाएगा। मामूली ऑपरेशन है। नौकरी उसकी बड़ी है। बड़ी नौकरी की समस्याएँ दमचुसनी होती हैं। उन्होंने सरकारी नौकरी की है। सरकारी नौकरी ताज़ी बियायी भैंस-सी दरवाज़े बँधी सदैव निश्चिंत किए रहती है।

सुनकर दीवू ने अबकी कोई ना-नुकर नहीं की। कहा कि वह गुड़गाँव से निज़ामुद्दीन स्टेशन पहुँचकर उन्हें ले लेगी। चिन्ता न करें।

मौसम ने उनकी अधीरता को अनुकूलता से सहलाए रखा। आशंकाओं को परे ढकेल दो रोज़ से चमकीले सुनहरे घाम की चढ़त ने कोहरे को ठिठकाए रखा था। उम्मीद थी कि ताज निर्धारित समय पर निज़ामुद्दीन पहुँच जाएगी। गाड़ी की रफ्तार जहाँ कहीं भी धीमी पड़ती, उनका जी बेलगाम होने लगता—पन्हाई गाय-सा बछिया से लिपटने को व्याकुल।

उनकी आँखों पर जैसे भरोसा नहीं था। व्याकुलता ने अपनी आँखें खोल ली थीं। अँधेरे और दूर टिमटिमाते जुगनू-से उजाले में उगती और पीछे छूटती बस्तियों को खिड़की के मोटे काँच को भेद पहचान लेना चाहती थीं वे आँखें कि दिल्ली कितनी दूर है!...

दीवू की गृहस्थी ढोकर ले जा रही हैं। देखते ही आँखें चमकाती अपने चिर-परिचित चिबिल्ले अन्दाज़ में ख़ुशी से उछल पड़ेगी बावली! उसकी ख़ुशी बाड़े तोड़ती है तो वह आसमान में उड़ते गुब्बारे-सी उड़ने लगती हैं और उसके पाँवों को हथेलियाँ कस, वह भी उसके संग उड़ान भरने लगती हैं... उड़ानें कल रात भी भरी थीं उन्होंने...

पिछले दस वर्षों से वह पाठक जी को मनाने की कोशिश कर रही हैं कि अव्यावहारिकता छोड़ वे तनिक दुनियादार हो जाएँ। मगर बात उठाते ही उनकी वही पुरानी तोता रटन्त शुरू हो जाती। कोई कमी है हम लोगों को? ग्वालियर जैसी ऐतिहासिक नगरी में अपनी छत के नीचे बैठे हुए हैं। गुज़ारे को खासी पेंशन है। खासी इसीलिए कि हमारे ख़र्च ही क्या हैं। हारी-बीमारी के लिए सी.जी.एच.एस. की सुविधा मामूली नहीं। तो फिर सांगीपुर की बित्ते भर की ज़मीन बँटवाकर कौन-सा खज़ाना झोली में आ गिरेगा! बड़े भैया के बड़के ने अपना वर्तमान-भविष्य सब कुछ झोंक दिया हरहों की सानी-पानी और खेत-खलिहानों की गोड़ाई-बोवाई में।

“बोलो, क्या चाहती हो तुम?” तन आए थे पाठक जी।

बोलने में निर्लज्ज हो आईं। ध्यान से उनकी सुने। अपने इधर बीस बिसुआ का बीघा होता है और डेढ़ लाख प्रति बीघे का हिसाब चल रहा है। उनके हिस्से के छह बीघे के नौ लाख बनते हैं। नौ लाख की रकम छोटी नहीं होती। ज़मीन की कीमत और सिक्स्थ पे कमीशन के बकाए की रकम हाथ आएगी तो दीवू के भाँवरों की चिन्ता से उन्हें मुक्ति मिलेगी। आई.ए.एस. दामाद का सपना निर्विघ्न रूप से साकार हो सकेगा। जहाँ तक लड़की के पसन्द आने का प्रश्न है, बेटी देख मजाल कोई मुँह फेर ले!

तंग हो आए पाठक जी ने पिण्ड छुड़ाया। इसी हफ़्ते वह बड़े भैया को गाँव चिट्ठी भेज देंगे। उन्हें स्पष्ट लिख देंगे कि अपने हिस्से के छह बीघा खेत वे बेचने की सोच रहे हैं। बड़े भैया चाहें तो उनके खेत स्वयं ख़रीद लें। उन्हें भी अच्छा लगेगा अगर घर की ज़मीन घर में ही बनी रहे। आँगन-दुआर बँटवाने का उनका कोई इरादा नहीं है। वैसे भी उन्हें नहीं लगता कि बड़के के तीनों बेटे स्कूली शिक्षा पूरी कर गाँव में बने रहेंगे और उच्च शिक्षा ग्रहण कर गाँव लौटने की सोचेंगे। बड़के को भी आगे चलकर छोटकवू से बँटवारा कर गाँव-देहरी का खाता बन्द कर बच्चों के संग रहने को मजबूर होना पड़ेगा।...

...बड़े भैया का छोटा बेटा छोटकवू यानी कि एडवोकेट वीरेन्द्र पाठक इलाहाबाद में वकालत कर रहा है। बता रहा था उनसे कि तगड़े आसामियों के झूठे-सच्चे मुकदमे हाथ में न लेता वह, तो वास्तविकता तो यह है कि वकालत का काला कोट खूँटी पर टाँग नगर निगम की क्लर्की करने की नौबत आ चुकी होती उसकी।

“पिछले महीने ही नैनी में हज़ार गज का प्लॉट ख़रीदा है छोटकवू ने!”

“ख़रीदा होगा, हमसे तो उधार नहीं माँगा उसने!” घिसे रेकॉर्ड-सी सूचना की दोहराहट ने पाठक जी में गुर्राहट पैदा कर दी।

आगे इस विषय पर चुप रहना ही बेहतर लगा उन्हें। गाड़ी तुगलकाबाद छू रही है... तुगलकाबाद पार करते ही पहियों की रफ्तार धीमी होने लगी। घण्टे भर विलम्ब से पहुँच रही निज़ामुद्दीन प्लेटफॉर्म पर प्रतीक्षा करती दीवू परेशान हो रही होगी।...

तेज़ हुई दिल की धड़कन उन्हें दिल के दिन-ब-दिन कमज़ोर होने की आशंका से भर देती है। प्लेटफॉर्म की सीढ़ियाँ चढ़ने में भी दम फूलने लगा है। पाठक जी को नहीं बताती इस भय से कि उनकी देह की चूलें कौन कमदिली हुई हैं।...

गाड़ी यहीं ख़त्म होती है, उन्हें हड़बड़ाने की कतई ज़रूरत नहीं, सोचा उन्होंने। रास्ते भर सामान पर नज़र गड़ाए हुए आई हैं। उतर जाएगा आराम से। अलबत्ता, कुलियों का बखेड़ा ज़रूर है। ग्वालियर के कुली और दिल्ली के कुली में फर्क है। दिल्ली के कुलियों की मनमानी से भय लगता है उन्हें। पाठक जी ने चेतावनी देकर भेजा है उन्हें। उठवाई जो माँगे, सो चुपचाप दे देना।

खिड़की से झाँकते ही दीवू ठीक डिब्बे के सामने खड़ी दिखी, लम्बे से काले कोट में। कुछ लम्बी-सी लगी। पागल ने कानों को ढँकने के लिए स्कार्फ क्यों नहीं बाँध रखा? इतनी

रात में बालों के लहराते कट कौन देखेगा!

वे अपनी सीट पर ही बैठी रहीं। सीट नम्बर दीवू को पता है। डिब्बे में कुली घुसते नज़र नहीं आए। मिल जाएँगे। जाड़े के दिन हैं।

उतरती सवारियों से बचती दीवू 'माँऽऽऽ' की गुहार लगाती उनकी बाँहों में सिमट गई और वे गौरेया हो आईं।... विह्वलता को आँखों में छलकने से बरजा उन्होंने...। उन्होंने महसूस किया। सीने से आ लगी बेटी संयत है।

"माँ, सामान?"

उन्होंने सीट के नीचे इशारा करते हुए उससे नीचे उतरकर कुली देख लेने का आग्रह किया।

"ज़रूरत नहीं है कुली की। विकी है न साथ!"

दीवू की मुड़ती नज़र के साथ उसके ठीक पीछे आ खड़े हुए लड़के की ओर देखा उन्होंने, जो उनकी नज़र अपने ऊपर पड़ते ही उनके पाँव छूने नीचे झुक गया। शालीन सकुचाहट से सराबोर।

"आण्टी, आप चलकर प्लेटफॉर्म पर खड़ी हो जाएँ, मैं सामान उतारता हूँ।"

"येऽऽ सारा अपना सामान है?"

"तो ये हैं विकी उर्फ विवेक साहनी उर्फ सहपाठी मददगार। जे.जे.जे. की सहायक प्रोजेक्ट मैंनेजर को घर दिलवाने वाला!"

प्लेटफॉर्म पर आकर खड़ी हो गईं वे उनके निर्देशानुसार।

होशियार है लड़की उनकी। सर्दी की ठिठुरती रात में जे.जे.जे. की सहायक प्रोजेक्ट मैनेजर होने के बावजूद गुड़गाँव से निज़ामुद्दीन उन्हें अकेले लेने आना, सुविधाओं से भरे शहर के जोखिमों का सामना करते हुए—आसान नहीं था। सामान उतरवाने से लेकर कुली आदि के प्रबन्ध का ज़िम्मा आगे बढ़ विकी ने ले लिया अपने कन्धों पर। अच्छी मैनेजर है दीवू, सोचा उनके मन ने।

मन ने मन को आश्वस्त भी किया। स्कूल, कॉलेज की दोस्ती ही असली दोस्ती होती है। उसकी जगह न रिश्तेदार ले सकते हैं न कार्यालय के सहकर्मी, क्योंकि बीच में उनके न कोई स्वार्थ होता है न प्रतिस्पर्धा...

ऐसा नहीं है कि दिल्ली में उनके गाँव-जवार के लोग नहीं रहते। मगर उनसे उन्होंने सदैव दूरी बरती है। वरना बच्चों को आगरे का ताजमहल दिखाने के बहाने वे ग्वालियर का क़िला देखने उनके घर आ टपकते।

इस मुद्दे पर पाठक जी भी उनसे सहमत हैं कि पढ़ने वाले बच्चों को भूलकर भी रिश्तेदारों की देहरी नहीं लँघानी चाहिए। किताबें खोलने की बजाय बच्चे वहाँ घर का आटा गूँथते नज़र आएँगे।

गाड़ी विकी चला रहा है। पीछे बैठे हुए इच्छा हुई कि विकी की बगल में बैठी हुई दीवू

से पूछ ही ले, 'गाड़ी अच्छी है, तुमने ख़रीदी वही है न?"

बिना बोले हुए जाने दीवू ने कैसे सुन ली उसके मन की बात, "यह गाड़ी विकी की है माँ! 'सैंट्रो' में स्टील ग्रे रंग उपलब्ध नहीं था। शोरूम वालों ने कहा है कि पन्द्रह-बीस रोज़ लग जाएँगे गाड़ी की डिलीवरी में। दिल्ली तुम मेरी उसी गाड़ी में घूमोगी। बरई वाले गुलाब जामुन लेकर आई हो न, माँ?"

"लाई हूँ न!" प्रफुल्लित हो आया जी, "दूकान से ताजे बनवाकर लाए हैं तेरे पापा।"

आवाज़ मचली, "कहाँ रखे हैं?"

"तेरे पाँव के आगे जो लाल रंग वाला एयर बैग रखा हुआ है न, उसी में हैं, स्टील के बड़े कटोरदान में।" सब दरका।

सावधानीपूर्वक एयर बैग उठाकर गोद में रख लिया। गाड़ी चला रहे विकी से अंग्रेज़ी में पूछा, "गुलाब जामुन खाओगे?"

जाने विकी ने क्या जवाब दिया कि उचटकर एयर बैग खोले बिना ही सीट के नीचे यथावत रख दीवू पर्स से रूमाल निकाल, विंड स्क्रीन पर सघनाते कोहरे की नमी को पोंछने लगी।

दीवू का उचटना उन्हें रुचा नहीं। आँखें फेर उन्होंने खिड़की से सटा लीं। रूमाल निकाल खिड़की का शीशा पोंछा। पिघली चाँदनी-सी सघनाती धुंध की झीनी परत के आर-पार सड़कों के किनारे खुदे हुए मिले। बड़ी तेजी से मैट्रो दिल्ली को ढोने के लिए कमर कस रही है। कभी सिर के ऊपर से फ्लाई ओवर गुज़रते हैं तो कभी गाड़ी फ्लाई ओवर की सर्पीली छाती पर फर्राटे भरने लगती है। दिल्ली केंचुल बदल रही है, ऊँची-ऊँची हैलोजन के सुनहरे आलोक में स्वप्नलोक सिरजती। आदमी पहले बदलता है या शहर! कुछ आदमी शहर को बदलते हैं, शेष आदमी शहर के बदलते ही स्वयं को बदल लेते हैं...

"सुनो माँ!" पीछे तिरछे हो मुड़ते हुए दीवू ने चेहरा उसकी ओर घुमाया, "मैंने तुम्हें बताया था न, फ्लैट सातवें माले पर है?"

"बताया होता तो मुझे याद होता न! परेशान हो रहे थे सामान ऊपर कैसे चढ़ेगा, घर ऊपर हुआ अगर..."

"वो, हुआ ऐसे कि इसी कॉलोनी में छोटी वाली बिल्डिंग में से एक तीसरे माले वाला फ्लैट पसन्द किया था पहले। लिफ्ट न होने की वजह से उसे छोड़ दिया।" अपनी सीट पर सीधी हो गई दीवू।

उधर व्यापी खामोशी उनके भीतर चटखने लगी।

हो सकता है, उन्हें भ्रम हुआ हो। विकी को डिब्बे से सामान ढोता देख दीवू खीझी लगी थी उन्हें। प्लेटफॉर्म पर सामान उतार लेने के बाद ही जाकर कुली मिला था। पाठक जी की पुरानी पैंटों से सिले गए झोलों का सदुपयोग भी अखरा होगा उसे। अल्यूमिनियम का पुराना ट्रंक देख बिदकी होगी। भारी-भरकम डबल बेड की रजाई सुरक्षित लाने का और क्या

तरीका हो सकता था? पिछले महीने ही कैंटीन से दो बढ़िया एयर बैग मँगवाए हैं पाठक जी ने लेकिन उन्हें हाथ नहीं लगाया, खरोंच पड़ने के अन्देशे से। कड़ाही, तवा, चिमटा पुराने झोलों में ही भले। यह क्या जाने गृहस्थी के झंझट! घर ले लेने भर से घर नहीं बस जाता। वे तो अपने संग नींबू निचोड़ने की नींबूदानी तक लेकर आई हैं। कब किस चीज़ की ज़रूरत आन लगे, कौन जाने। उसके ब्याह के लिए उसके पैदा होते ही चीज़-बस्त जोड़ने-सँजोने लगी थी।

उन्हें तो अपनी अड़तीस साल पुरानी गृहस्थी में भी लगता रहता है कि वे अब तलक अपनी बैठक को उस तरह नहीं सजा पाईं जिस तरह सजाना चाह रही थीं।

"बस, आ गए माँ! वह रहा सामने इफ्को चौक। हम यहीं से मुड़ेंगे।"

"मालूम है... पिछली बार यहीं किसी मॉल में ले गई थी।" इफ्को चौक से गाड़ी बाएँ मुड़ गई।

पहुँच भी गए। रास्ते भर दोनों अंग्रेज़ी में लगातार बतियाते रहे हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने भी अंग्रेज़ी में एम.ए. किया है मगर एक बात उनके पल्ले नहीं पड़ी। पड़ती कैसे? खुसर-फुसर गलबहियाँ डाले कानों को ही समझ में आती है।

कॉलोनी बड़ी शानदार लगी उन्हें। सजावटी पेड़-पौधों से सजी-धजी। गुलमोहर अभी कद निकाल रहे हैं। दो-चार वर्षों के भीतर ही रिहाइश के लिए तैयार हुई लगती है।

दीवू ने घर का लैच खोला। ठिठक गई दरवाज़े पर। दोनों ओर क्रिसमस ट्री के दो गमले रखे हुए थे और चौखट के ऊपर लटक रहा था कच्छी तोरण! यहाँ कैसे आया? पिछली बार दीवू, शाम्भवी, अनिभा और शुभ्रा के साथ मयूर विहार के निकट अक्षरधाम गई थी तो ग्वालियर के लिए ठीक ऐसा ही ख़रीदा था उन्होंने। कौड़ियों की झालर और गेंदे के फूलों से गोल-मटोल रंग-बिरंगे फुंदनों से अलंकृत। किनारों पर ठीक वैसे ही नन्हे चोटीले लटके हुए।

"माँऽऽ भीतर आइए न!"

चकित-सी वह बेहद सुरुचिपूर्ण बैठक में दाखिल हुई।

लिफ्ट रोक विकी सामान उतार बैठक की दाहिनी खिड़की के नीचे के ख़ाली स्थान पर रखने लगा।

रसोई में ले गई दीवू, "यह मॉड्यूलर किचन है माँ। बस फ्रिज, ओवन, वॉटर प्यूरीफायर भर ख़रीदे हैं..." और उन्हें लेकर मुड़ी दीवू शयन कक्ष की ओर—"यह है बेडरूम।"

मोटे गद्दे से सजा हुआ पीतल का शाहाना भारी-भरकम पलंग उन्हें बहुत पसन्द आया।

"बहुत सुन्दर है—कलात्मक! मैं तेरे लिए मखमल की बेहद प्यारी-सी डबल बेड की रज़ाई लेकर आई हूँ। अभी निकालकर लाई।"

"रूई की है?"

"हाँ, रूई की।"

“कौन ओढ़ेगा रूई की रजाई, माँ”

“तू नहीं ओढ़ेगी?”

“मैं नहीं ओढ़ सकती रूई की रज़ाई। गद्दों में डस्ट माइट्स हो जाते हैं... मैंने फोम की ख़रीद ली है।”

“लेकिन... तूने ही तो कहा था भरवाने के लिए?”

जवाब में दीवू खिलखिलाई, “कहा होगा, तब तुम्हारी पसन्द ही मेरी पसन्द थी न!”

हतप्रभ हो उठीं। उनके सीने में चंबल के ढूँह भरभरा आए। लगा कि उनकी घुटी चीखें पिघले लावे में तब्दील हो रही हैं...सहसा उन्होंने स्वयं को झकझोरा, जैसे पाठशाला से लौटते हुए गाँव के प्रमुख गलियारे के एक ओर खड़े बेरी के तने को घेरकर झकझोरती थीं। विकी घर में मौजूद है। पराये बच्चे के सामने आत्मबल खो निरीह हो उठना उचित नहीं। भले ही वह दीवू का सहपाठी रहा हो। संयत होने की चेष्टा करती हुई वह शयनकक्ष से बाहर निकल आईं। बैठक में रखे सामान में लाल रंग वाला एयर बैग ढूँढ़ने लगीं। एक अन्य एयर बैग के नीचे रखा हुआ दिख गया उन्हें लाल वाला एयर बैग।

उन्हें ऊपर वाला बैग उठाते देख विकी मदद को लपक आया। लाल वाला एयर बैग भी खोल दिया उसने।

बैग से उन्होंने मुरैना गजक वाले किलो-किलो भर के दो डिब्बे निकाले। गुड़ और शक्कर—दोनों के और डिब्बों को विकी की ओर बढ़ाते हुए बोली, “एक से ऊपर हो रहा है बेटा, बहुत रात हो गई। शेष धरा-उठाई हम सुबह कर लेंगे। तुम अब घर निकल जाओ। सब रास्ता देख रहे होंगे तुम्हारा।”

सकुचाए-से खड़े विकी के हाथ से गजक के दोनों डिब्बे लेते हुए दीवू सीधे उनके सामने आ खड़ी हुई, “तुम्हें और पापा को... बताने की मैं हिम्मत नहीं सँजो पाई माँ!... दरअसल, मैंने और विकी ने बिना फेरों के...साथ रहने का निश्चय किया है...तुम आ गई हो तो अब हमारे सम्बन्धों पर मुहर लग जाएगी।...”

वे ढहती-सी पास वाले सोफे के हत्थे-सी टिकती सोफे में धँस गईं।

उन्हीं के सहारे दीवू ने उबरने की कोशिश की, “कुछ खाओगी माँ!”

बड़ी कठिनाई से अपने स्वर को खोज होंठों तक खींचकर लाईं...”रास्ते में दवा खानी थी। साथ लाई कचौड़ियों में से दो निकालकर खा ली थीं।”...

कॉफी बना दूँ...?”

“उद्दंड... बदतमीज!” भीतर गरजी। बाहर दीवू को यही सुनाई दिया, “ज़रूरत नहीं।”

दाँत भिंच गए उनके। थरथराती काया पर आर-पार होती आरी-सी चल रही। अब हुईं धराशायी। सोफे के हत्थे पर हाथ और कस गए।

बगल के छोटे कमरे में उनके सोने का इन्तज़ाम कर दिया गया है। दीवू की आवाज़ में कोई ऊभ-चूभ नहीं, “सो जाएँ जाकर। कल की छुट्टी ले रखी है। सुबह बात होगी।”

सुबह देख पाएँगी वह!
दीवू अपने शयन कक्ष की ओर चली गई। विकी निर्लिप्त-सा उसके पीछे हो लिया।

बाघ

पुरोहित जी को देख रहे हैं?... पुरोहित जी कैसे कढिलते हुए-से ज़ीना चढ़ रहे हैं!

पहले माले पर पहुँचते ही वे गर्दन उठाकर न दिखने वाले चौथे माले तक की सीढ़ियों को जिबह होने वाली लाचारी से ताकते और छूटी हिम्मत बटोरकर अगली सीढ़ी पर पाँव बढ़ा देते। सीढ़ियों पर चढ़ते-उतरते पुरोहित जी को अपने स्वास्थ्य पर संशय होने लगता, कहीं वे दमे के मरीज़ तो नहीं? दरवाज़े तक पहुँचते जो साँसें उखड़तीं, किसी उपाय मुट्ठी में न आतीं।

...मयूर विहार की 'नवभारत सोसाइटी' के डूप्लैक्स फ्लैट का ऊपरी हिस्सा पुरोहित जी ने अभी कोई पाँच महीने पहले ही किराये पर लिया। पत्नी ऊपर का फ्लैट लेने के पक्ष में नहीं थीं, उनके रक्तचाप की चिन्ता के चलते। पुरोहित जी ने ही आश्वस्त किया। इस ठौर रहना ही कितने दिन? चढ़ना-उतरना कितना? कार्यालय के लिए जो सुबह उतरे, वापस लौटे ही चढ़े। छह महीने की अवधि है आयकर वालों की। इसी अवधि में उन्हें हर हालत में अपना घर खरीद लेना है। अपने डेरे पहुँचे नहीं कि ऊपर-नीचे की हाड़-तोड़ी खत्म!

इस ओर आने की सोची किसने? सस्ते किराए के पीछे जमुनापार आकर बसना मजबूरी बन गया। पटेल नगर के रौनक-भरे पुश्तैनी मकान में बीजी की मृत्यु के उपरान्त रहना दूभर हो उठा। छुट्टी की सुबह अखबार पढ़ते हुए दूसरी चाय पूरी घूँट भी नहीं पी पाते कि गोद पला भाई बिल्ला अड़ियल सूदखोर की भाँति खूँटा गाड़ के सामने आ बैठता और कमर सीधी करने के नाम पर हफ्ते-भर में मिलने वाली एकमात्र छुट्टी को गँडेरियों-सी चूसने लगता।

बिल्ला को मकान में हिस्सा चाहिए था। तत्काल। उसे सहन नहीं हो पा रहा था कि बीजी की मृत्यु के उपरान्त वे उस घर में ठाठ से क्यों बने हुए हैं, जबकि वह राजेन्द्र नगर की एक खस्ताहाल कोठी की दुछत्ती में अपनी पत्नी और आठ वर्षीय बेटे के संग, पन्द्रह सौ रुपये किराए पर गुज़र करने को अभिशप्त हैं।

बिल्ला और उसकी पत्नी कुक्की ब्याह के दो ढाई-वर्षों तक कुटुम्ब में ही रहे। रसोई साझी, खर्चे बेढक्कन! उसके ब्याह से पहले कुटुम्ब की बागडोर जब बीजी के ज़िम्मे थी, बिल्ला ढाई सौ रुपये बीजी की हथेली में पहली को रख देता। यह करामात उनकी ही थी।

बीजी की नज़रों में औलाद की अहमियत बनी रहे और वे शान्त रहें। इसकी खातिर वे तीस की रात भोजनोपरान्त उसके संग मोहल्ले में चहलकदमी को निकलते और उसकी जेब में खिसका देते ताकि वह सुबह बीजी की हथेली पर पैसे रख सके। दरअसल, उसे न खर्चों से वास्ता होता न तंगी का मलाल! ब्याह के बाद भी बेशर्मायी खरोंच-भर न छिली। वे दो और उनके तीन। बिल्ला और कुक्की संग। बीजी की हारी-बीमारी ऊपर। कमरतोड़ महँगाई की दिन-दूनी रात-चौगुनी छलाँगें। उनके कन्धों पर पड़े डट्ठे बीजी ने महसूस किए। मुँह खोल बैठी गले तक आते ही। बस्स, मियाँ-बीबी ने अलाय-बलाय बक मोहल्ला सिर पर उठा लिया। बिल्ला लिहाज छोड़कर बोला, घर बेचकर मुझे मेरा आधा हिस्सा दे दो। हमें नहीं रहना संग। घर बड़े के परिवार ने अगुवाया हुआ है, खटोले-भर ठौर नहीं कहीं हम दोनों के लिए?

बिल्ला की निर्लज्ज धौंस बीजी को छलनी कर गई। मोहल्ले वालों का छज्जों पर लटक उनके घर की नंगई में रस लेना अधिक अखरा। हफ्तों बिस्तर से लगी रहीं। उठीं तो उनकी कृश काया में न जाने कौन-सी चंडिका माँ आ समाई कि मोह-माया झटक आँचल का दूध झाड़ने को उतारू हो उठीं। घर उनके नाम है। जब तक ज़िन्दा हैं वे, बड़े बेटे-बहू के संग रहेंगी। मरने के बाद भी घर उसका। अपनी औलादों का निवाला रूखा-सूखा कर बड़े ने इन दीवारों की कच्ची-पक्की सहेजी। घर के खर्च में आधा न सही, मुनासिब हिस्सा बँटा सको तो संग गुज़र भली, वरना चूल्हा-चौका समेट चल दो। कोई गम नहीं। कोई गिला नहीं। अन्तिम दिनों में बीजी के दोनों गुर्दे जर्जर हो आए। पाखाने तक पहुँच नहीं पातीं कि पेशाब चूने लगता। पत्नी दिन-भर फर्श पोंछती। बच्चे घिनाते। पुरोहित जी ने महसूस किया कि पत्नी बीजी का गू-मूत उठाती तो है लेकिन मन से नहीं, फर्ज़ के दबाव से। उन्होंने कार्यालय में अपनी बकाया बीमारी की छुट्टी और अर्जित छुट्टी के लिए अर्जी दे दी। अनावश्यक छुट्टी कभी ली नहीं, बावजूद इसके अर्जी देखते ही निदेशक महोदय की त्योरियाँ चढ़ गईं। इतनी लम्बी छुट्टी माँगने का औचित्य उन्हें नज़र नहीं आया, बीजी की हालत जान लेने के बावजूद, पुरोहित जी दृढ़ रहे। छुट्टी मंज़ूर नहीं हुई तो वे बिना तनख्वाह घर बैठ जाएँगे। बीजी उनकी जननी हैं। जननी को वे कुटुम्ब की दया-माया के भरोसे छोड़ दें! अस्पताल वालों ने पहले ही हाथ उठा दिए कि इस उम्र में और इतनी कमज़ोरी में न गुर्दों का प्रत्यारोपण सम्भव है, न इलाज। जितने दिन साँसें खींच ले जाएँ, परमात्मा की कृपा समझो।

ढाई महीने बीजी का गू-मूत अपने हाथों उठाया। सिरहाने से हिले नहीं। बिल्ला और कुक्की गाहे-बगाहे झाँक जाते। बँटवारे का कीड़ा जब-तब काटता ही रहता। एक शाम उसने नीचता की हद ही कर दी। अस्थि-पंजर हो चली बीजी की बाँह झकझोरते हुए पूछने लगा कि जो भी गहने-गुरिया उनके पास धरे हों लुकाए-छिपाए, बता दें। जिसे जो देना हो, हाथ से उठाकर दे दें। बाद में सिर-फुटौवल से फायदा?

बीजी ने असहाय दृष्टि से अपनी नालायक औलाद की ओर देखा। वही निस्सहायता छटपटा आई उनकी डूबती आँखों में, जो किसी का गला घोंटते समय, घुटकर साँस छोड़ती आँखों में प्राणों की भीख के लिए उपजती है।—'मुझे बख्श दे पुत्तर! बख्श दे!' बड़ी

कोशिश से क्षीण कलाई उठाकर बीजी ने अपनी सूखी-पीली हथेली—'कुछ नहीं है पास पुत्तर!'—वाली मुद्रा में हिलाई थी।

मकान जल्दी ही औने-पौने दामों में बेचना पड़ा पुराहित जी को।

एक रात दारू में धुत्त उद्दंड बिल्ला घर में घुस आया और अपनी खूँखार धमकियों से पूरे घर को आतंकित कर गया कि हफ्ते-भर के भीतर मकान बेचकर वे उसका हिस्सा दे दें। अपने नए घर की पेशगी दे आया है वह। नीयत में खोट की तो उससे निपटने के हथकण्डे भी आते हैं उसे। वे जो अपने स्कूटर पर ठीक पौने नौ पर दफ्तर के लिए नेहरू प्लेस निकलते हैं, पीछे से किसी डी.टी.सी. के ड्राइवर से धक्का दिलवा देगा। वैन चढ़वा देना भी उसके लिए मुश्किल नहीं। बिल्ला ने यह भी धमकाया कि उसके खिलाफ वे रिपोर्ट-विपोर्ट के चक्कर में न फँसें। उसे सिद्ध करने में मिनट नहीं लगेगा कि पुश्तैनी मकान हड़पने की फिराक में हैं वे! नीयत डोली हुई है उनकी। वह मजबूर तो अब तक दुछत्ती का किराया भर रहा है और सब्र किए बैठा है!

चाचा की धमकी के बाद अगली सुबह बच्चों ने उन्हें स्कूटर नहीं निकालने दिया। मकान का सौदा होने तक कार्यालय पहुँच पुरोहित जी को फोन कर घर सूचित करना पड़ता कि वे सुरक्षित पहुँच गए हैं। चिन्ता न करें उनकी।

दरवाज़ा पत्नी ने खोला और बगल हटकर खड़ी हो गईं। हाँफते हुए पुरोहित जी बैठक में पड़े पलंग पर लम्बे हो गए। पत्नी ने पंखा पूरी गति पर कर दिया। सिरहाने चुपचाप हाथ बाँधकर खड़ी हो गई। उखड़ी साँसें सामान्य हो लें, तभी चाय-पानी को पूछें।

अरारोट के 'मारी' बिस्किट उनकी ओर बढ़ाते हुए पत्नी ने धीरे-से अब तक दबाई जिज्ञासा परोसी—'दिखाए कुछ फ्लैट्स कपूर ने?' उनका तात्पर्य प्रॉपर्टी डीलर से था।

"दिखाए न!" चाय की घूँट से गुनगुनाया पुरोहित जी का स्वर अपेक्षित रूप से उत्तेजित नहीं हुआ।

"क्यूँ, पसंद नहीं आया कोई?"

"आया एक।"

"कहाँ...?"

"अपने डॉ. चतुर्वेदी जी रहते हैं न, ध्रुव अपार्टमेंट्स में?"

"हूँअ।" पत्नी ने जगह याद करने की कोशिश की।

"उनकी बिल्डिंग के ठीक बगल वाली बिल्डिंग में। पहले माले पर तीन बेडरूम हैं, तीनों के साथ गोलाकार छोटी-छोटी बालकनी जुड़ी हुई हैं। अलमारियाँ और पेलेमेट्स बने हुए हैं, चौबीस घण्टे पानी की सुविधा। जाड़ों की धूप आमने-सामने वाले कमरों में भरपूर आएगी।...छोटा स्टोर भी है।"

"जमुनापार चौबीस घण्टे पानी की सुविधा समझो नियामत!" घर के खाके के साथ पानी की बात सुन पत्नी उत्साहित हो उठी।

"वह सब तो ठीक है," पानी के नाम पर पत्नी का इस कदर विभोर होना पुरोहित जी को विशेष रुचा नहीं—"मकान मालिक मि. खुल्लर कस्टम में हैं और सत्रह माँग रहे हैं... जमनापार इतनी कीमत! कांकरीट का जंगल है, जंगल! दूर-दूर किसी जवान पेड़ की परछाईं तक नहीं... माचिस की डिबिया जैसे कमरे, कहने को तीन बेडरूम, मगर अपने पटेल नगर वाले मकान के एक कमरे के तीन हिस्से-भर समझो!"

खिन्नता समझ में आ रही है। जहाँ भी घर देखने जाते हैं, पटेल नगर वाले घर से तुलना कर परखते-तौलते हैं। कहाँ, कौन-सा इलाका छूटा? पश्चिम विहार, पीतमपुरा, जनकपुरी, वज़ीराबाद के पुल के उस पार यमुना विहार—कोई मकान पसन्द नहीं आया। पाँच महीने देखते-देखते निकल गए। उनका मर्म समझती हैं वे। बीजी की मौत से अनाथ ही नहीं हुए वे, बेघर भी हो गए। जो कुछ छिन गया, छूट गया, छूटता है कहीं! कल उससे बेहतर जगह पहुँच जाएँ तब भी उनका 'अपना घर' पटेल नगर वाला मकान ही रहेगा।

पुरोहित जी के मन-मस्तिष्क पर इन दिनों कुछ ज़्यादा ही दबाव है। कई समस्याओं से एक साथ जूझ रहे हैं। महसूस करती भी हैं कि पहली को जो अट्ठारह सौ रुपये किराए के सीधे तनख्वाह में से निकल जाते हैं, उसके मद में घर के कई ज़रूरी खर्चों में भारी कटौती करनी पड़ी। दूध कटा बच्चों का, महँगी सब्ज़ियाँ कम हुईं। बासमती चावल गाहे-बगाहे हो गया। पुरोहित जी ने स्कूटर से कार्यालय आना-जाना बन्द कर दिया। बिल्ला की धमकी के भय से पहले उन लोगों ने उनका स्कूटर से आना-जाना बन्द करवाया, पेट्रोल के पैसे बचाने की खातिर अब वे स्वयं। डी.टी.सी. बस से आने-जाने में बड़ी दिक्कत होती है। उन्होंने ही अड़ोस-पड़ोस से पूछ-पाछ पता लगाया कि 'नेहरू प्लेस' के लिए 'हिन्दुस्तान अपार्टमेंट्स' के सामने से ठीक पौने नौ पर एक चार्टेड बस निकलती है। एक चिन्ता कटी। उसी से आने-जाने लगे पुरोहितजी। बन्धन हो गया तो बस इतना कि समय की पाबन्दी के चलते घर लौटने से पूर्व घण्टे-डेढ़ घण्टे के लिए मित्रों के संग कॉफी हाउस में गप-शप की गुंजाइश न रही। यही अट्ठारह सौ रुपये पटेल नगर में पक्के बचते थे। घर भी ऐसे मौके का कि सीढ़ियाँ उतरते ही पटरी का रौनकमय बाज़ार। सामने छज्जे पर से आवाज़ लगाते ही तुलकर टोकरी में साग-सब्ज़ी ऊपर। यहाँ मयूर विहार में वो शाहाना सहूलियतें कहाँ!

गीज़र खोलते ही नहान-घर का दरवाज़ा भड़भड़ाया। बड़ी मुश्किल है इस घर में। पुरोहित जी को खूब अखरता है। पाखाना और नहान-घर एक ही में बने हुए हैं। कोई नहाने घुसा और किसी को ज़ोर से पाखाना आया, समझो अगले का नहाना मुहाल! नहाने वाले को कपड़े लपेट अजीब हुलिये में बाहर निकलना पड़ता। सुबह उनके नहान-घर में घुसते ही अक्सर ऐसा होता। माँ की अनेक चेतावनियों के बावजूद बच्चे समय से पाखाना न जाते और पुरोहित जी के बदन पर पानी उड़ेलते ही दरवाज़े पर थपकियाँ शुरू हो जातीं। पटेल नगर वाले घर में शुद्ध-अशुद्ध पर कितना विचार था?

"कौउन?" गीज़र बन्द कर उन्होंने भीतर से टोह ली।

पत्नी की आवाज आयी—"सुनिए! 'ग' भाई साहब का फोन आया है आपके लिए पड़ोस में।"

समझ गए कि 'ग' को विशेष रूप से उन्हीं से बात करनी होगी, वरना पत्नी नहाते हुए उन्हें कम ही छेड़ती है। अच्छा हुआ, बदन पर पानी नहीं डाला। उतरी लुंगी के ऊपर कुर्ता डाल वे उपाध्याय के घर फोन सुनने निकले।

इस घर में फोन ट्रांसफर नहीं करवाया। यही सोचकर कि अपने घर में ही सीधे ट्रांसफर करवाएँगे। बहुत करीबी मित्रों को ही पड़ोसी का नम्बर दे रखा है इस हिदायत के साथ, कि जब तक कोई बेहद ज़रूरी सन्देश न हो, पड़ोसी को बुलाने का कष्ट न दें।

"बोल भई 'ग' क्या समाचार है...?"

"यार, तुम मकान खरीदना चाह रहे हो न?"

"मकानों की मुँहदिखाई के अलावा मैं आजकल कुछ कर भी नहीं रहा। कोई है नज़र में?"

"है एक, यहीं मेरी कॉलोनी में ही।"

"तेरी कॉलोनी में? दक्षिण दिल्ली में?" पुरोहित जी की अँकुलाती उम्मीद की नाव में अचानक छेद हो गया—"वहाँ के भावों का अन्दाज़ा है मुझे। चार हज़ार रुपये प्रति स्क्वायर फुट। बीस-बाईस से कम में नहीं पड़ेगा मेरी ज़रूरत का फ्लैट।"

"समझने की कोशिश कर। जो बात मैं खुलकर करना चाहता हूँ, फोन पर सम्भव नहीं। दीवारों के भी कान होते हैं और मैं ठहरा सरकारी मुलाजिम! ऐसा कर, तू आज शाम रीगल कॉफी हाउस में मिल।"

"मिलता हूँ, कितने बजे?"

"छह-सवा छह!"

इतना समय उन्हें डी.टी.सी. से कनॉट प्लेस पहुँचते हो जाएगा। बस चार्टेड छोड़नी होगी।

"पक्का मिलते हैं।" 'ग' ने उधर से फोन रख दिया।

प्रसन्नचित्त पुरोहित जी घर की ओर बढ़ने से पहले रसोई में झाँककर श्रीमती उपाध्याय को फोन के लिए धन्यवाद कहना न भूले। कितने दिनों बाद जाना होगा कॉफी हाउस।

घर के भीतर हुए नहीं कि पत्नी ने उत्सुक होकर पूछा—"क्या कह रहे हैं 'ग' भाई साहब?"

पुरोहित जी ने परखती दृष्टि से क्षण-भर पत्नी को देखा। उन्होंने महसूस किया कि जो भी बातचीत मकान के सन्दर्भ में उनके और 'ग' के बीच हुई है, जितनी हुई है—बता देने में कोई हर्ज़ नहीं। बीजी से हर छोटी-बड़ी बात कर लिया करते थे। पत्नी से बाँटना कभी ज़रूरी नहीं लगा। उसकी सामर्थ्य को आँकने की कोशिश भी नहीं की। बीवी की मृत्यु के उपरान्त प्रत्येक क्षण पीछा करती पत्नी की प्रश्नाकुल आँखें उन्हें कुरेदने लगीं। वे अक्सर

अनमने हो उठते, पत्नी के झिड़कने के बावजूद। बहुत सोचने के बाद उन्होंने खुद को ही मनाया कि पत्नी से चुटकुलों-भर का ही तो सम्बन्ध नहीं।

"एक मकान है 'ग' की ही कॉलोनी में!"

"साउथ दिल्ली?" विश्वविद्यालय जाने के लिए घर से निकलने के लिए तैयार उनकी मँझली सन्तान बेटी नैनी ने अविश्वास से उनकी ओर देखा—"रियली पापा? कितने कमरों का है... क्या कीमत है?"

"तीन कमरों का बता रहा है। उसी मसले पर बात करने के लिए तुम्हारे 'ग' अंकल ने आज शाम कॉफी हाउस बुलाया है।"

"फिर भी अंकल ने कोई अन्दाज़ा दिया होगा?"

"बेटे! मैंने उन्हें अपनी गाँठ बता दी।"

"ओ पापा! साउथ दिल्ली, साउथ दिल्ली है। मौके का मकान मिल रहा हो तो थोड़े-बाड़े रुपयों का जुगाड़ लोन-वोन लेकर कर लीजिए। उजड़ों की बस्ती में रह रहे हैं हम! मेरी 'यू' स्पेशन (विश्वविद्यालय के लिए विशेष बस) में पास के चिल्ला गाँव से उद्दंड लड़के चढ़ आते हैं और बस की लड़कियों को छेड़ते हैं। परसों की घटना मैंने आपको नहीं सुनाई। आप चिन्ता में पड़ जाएँगे, यही सोचकर। बच्चू भैया (बड़े भाई) ने भी मना किया कि पापा से मत कहना।"

दबाव डालने पर नैनी ने बताया कि परसों सुबह उसकी 'यू' स्पेशल में चिल्ला गाँव के मोड़ से दो गुण्डे छोरे चढ़ आए। एक ने लपककर बस चालक की पीठ पर छुरा रख दिया और उसे धमकाया कि बस लोटस टैम्पल सैर को ले चले। दूसरे छोकरे ने फिल्मी अन्दाज़ में देशी कट्टा तानकर लड़कियों को जगह पर से न हिलने की चेतावनी दी। बस निज़ामुद्दीन पुल की ओर मुड़ गई।

"विरोध करने का साहस नहीं किया किसी ने?"

"कौन अपनी जान जोखिम में डालता?"

"पिछले वर्ष इसी बस में शर्मिला नाम की छात्रा को एक गुण्डे ने छेड़ा। रोमेश नाम के विद्यार्थी ने उसका विरोध किया। बदले में उस गुण्डे ने रोमेश को छुरा घोंप दिया।"

"तुम लोगों ने क्या किया?"

"कर ही क्या सकते थे? बस महारानी बाग के निकट पहुँची नहीं कि गुण्डे लोगों की आवाजाही देख डर गए। चोर रास्ते से पहले बस रुकवाई, बस से कूदे और आनन-फानन चंपत हो गए। आश्रम पुलिस चौकी में हमने शिकायत दर्ज करा दी।"

"देर हो रही है... तू जा..." उन्होंने विचलित न होने का नाटक किया।

विश्वास नहीं हुआ, लेकिन अविश्वास का कारण भी नहीं। किस्से-कहानियाँ गढ़ना नैनी की आदत नहीं। नैनी के साथ घटी दुर्घटना सुनकर यही आभास हो रहा कि दिल्ली ही नहीं, सरकार ने समूचे देश के तड़ीपारों को जमुनापार लाकर बसा दिया है। वे तड़ीपार इलाके की

कानून और व्यवस्था को अपने हाथों तिनगी-सा नाच नचा रहे, जिनके बीच रहना जीवन-पर्यन्त आतंक और असुरक्षा में जीना होगा। कहने को आधी दिल्ली इस ओर रह रही, एक अनोखे वही नहीं। मगर लगभग पौनी आयु अमन-चैन में गुज़ार देने के बाद अशान्ति बरदाश्त नहीं।

दरअसल, ढूँढ़ने को वे पटेल नगर के आसपास घर ढूँढ़ लेते। महीने-भर के भीतर बिल्ला ने राजेन्द्र नगर में मकान ले ही लिया। लिया नहीं बस दो कारणों से। उस इलाके में फटकना नहीं जहाँ बिल्ला की मौजूदगी से सामना करना पड़े। दूजे, बीजी की स्मृतियाँ। एक और व्यावहारिक कारण रहा। कीमतें! जमुनापार उससे आधी कीमत में बड़ा मकान मिल जाएगा।

बहरहाल, एक बात स्पष्ट हो गई। प्रकट में बच्चे कुछ कहते नहीं, लेकिन जमुनापार रहना उन्हें गले तक अघाये हुए था...

पुरोहित जी के मन में दक्षिण दिल्ली के मकान के विषय में एक अव्यक्त किस्म का दबाव बनने लगा। नहान-घर में दुबारा घुसते हुए उनका दिमाग तेज़ी से बीमों आदि पर कर्ज़ की सम्भावनाओं के विषय में सोचने लगा। नैनी के तर्कों में दम है। एकदम आँखें नहीं मूँद सकते उससे। अच्छी जगह रहने के अपने मायने हैं। पटेल नगर की कीमत अब अनुभव हो रही है। जीवन में एक बार घर बनाता है आदमी। आगा-पीछा सोचकर ही बाबूजी ने पटेल नगर चुना होगा!

पुरोहित जी के कॉफी हाउस पहुँचने से पूर्व 'ग' वहाँ पहुँच चुका था और बाईं ओर की बड़ी खिड़की के निकट वाली मेज़ अगुआये बैठा हुआ था, ऐसे कि उस मेज़ पर दो व्यक्तियों से अधिक बैठ ही न पाएँ और उनके एकान्त में खलल न पड़े।

"देर हुई तुम्हें पहुँचे?" पुरोहित जी अपराध-बोध से भरे हुए बोले।

"आधे घण्टे से ऊपर हो रहा... वह तो ठीक है, मगर तू अटक कहाँ गया? मैंने यहाँ से तुझे फोन भी किया, फोन भी व्यस्त मिला लगातार।..."

"क्या बताऊँ?" बोलते हुए पुरोहित जी बेस्वाद हो आए—"कागज़-पत्र समेटे नहीं कि निदेशिका महोदया ने एक केन्द्रीय मन्त्री का अभिभाषण सरका दिया मेज़ पर अनुवाद के लिए। बहुत ज़रूरी है पुरोहित जी, निपटा दीजिए चलते-चलते।"

"ओहो! लावण्यमयी श्रीमती मोहिनी श्रीवास्तव हैं आजकल तेरी बॉस! मना कैसे करता उन्हें। पाँचों उँगलियाँ घी में और सिर कड़ाही में..."

"पटरी पर आओ बन्धु! छिछोरेपने की उम्र गई तुम्हारी-मेरी।'

"अपनी कौन छिपी? पटरी पर चढ़ते-उतरते न रहते भैये, तो केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो की रूखी नौकरी हलक की हड्डी हो गई होती" 'ग' ने बेहयाई से दाहिनी आँख दबाई।

"सो तो है," मोहिनी श्रीवास्तव से खिन्न पुरोहित जी 'ग' से सहमत हुए—"अनुवाद की

खड़ताल बजाते-चाटते हम भी ससुरे असल से अनुवाद होकर रह गए...कॉफी मँगवाई?"

"मँगवा के रख लेता, मगर अफसोस कि मैं संजय नहीं, वरना दिव्य दृष्टि से देख लेता कि पुरोहित जी की सवारी 'कॉफी हाउस' की सीढ़ियाँ चढ़ रही है, और जनाब की खिदमत में मुझे फौरन कॉफी का ऑर्डर दे देना चाहिए। ...क्यों, बहुत मुँह सुखा दिया निदेशिका महोदया ने?"

पुरोहित जी झेंप उठे—"चलो, खिदमत में हम हाज़िरी बजा लाते हैं।" उन्होंने बैरे को बुलाकर कॉफी का ऑर्डर दिया और अब तक दिमाग में भरी बजबजा रही खुन्नस को झटक चेहरे पर प्रफुलता ओढ़ी! कुछ भी कहो, 'ग' जीवन्त है। 'ग' के चलते उन दिनों कार्यालय का निहायत बोर वातावरण सरस हो उठता। लंच के जमावड़े में एक के बाद एक माँसाहारी चुटकुलों के ठहाकों से हलक में कौर अटकने लगते। महिला सहकर्मी मुँह घुमा झेंपने लगतीं, मगर दूसरे दिन फिर डिब्बा लिये उसी जमावड़े में संग होतीं। काम के बोझ से पिटे चेहरे एकदम ताज़े उत्फुल्ल हो अपनी मेज़ों पर लौटते।

कॉफी का पहला घूँट भरते ही 'ग' का स्वर रहस्यमय हो आया। मेज़ पर कुहनियाँ टिका, धनुषाकार हो वह पुरोहित जी के एकदम निकट हो गया।

"काम की बात पर आएँ... मेरा मकान देखा है न तूने?"

"देखा है।"

"मेरे मकान की ठीक पीछेवाली गली में एक मि. 'ख' का मकान है। हमारी पूरी बस्ती हमारे मज़हबियों की है। मि. 'ख' एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो दूसरे मजहब के हैं। पिछले साल भागलपुर में हुए दंगों की प्रतिक्रिया में चाँदनी चौक वगैरह में कर्फ्यू लग गया तो हमारी मुख्य सड़क से लगी उस पार की पूरी बस्ती में भयानक दंगे फैल गए... तुम्हें याद है?"

"भूलना मुश्किल है।"

"कहते हैं न कि हमारे घरों में साग-सब्ज़ी काटने वाला तेज़धार एक मामूली-सा चाकू तक नहीं होता, फिर भी तुमने अखबारों में पढ़ा होगा कि हमारे मज़हबियों ने उस पार की बस्ती में घुसकर बस्ती के बाशिन्दों के घर फूँक दिए, दुकानें लूट लीं... प्रतिवाद में उन्होंने भी अपनी बस्ती में रह रहे हमारे मज़हबियों के इक्के-दुक्के घर फूँक दिए, सम्पत्ति लूट ली...याद है?"

"याद है..." विषाद की सिसकारी-सी खींच क्षण-भर को पुरोहित जी ने आँखें भींच लीं। बन्द आँखों के आगे नरभक्षी लपटों से घिरी रोंगटे खड़े कर देने वाली 'इण्डिया टुडे' की दंगों की सचित्र रिपोर्ट घूम गई।

"पुरोहित! फिर वही होगा... वैसी ही लपटें उठेंगी, बस्तियाँ सुलगेंगी, दोनों मज़हबियों के बीच जो विवाद इधर तूल पकड़ रहा—वह लोगों को वारे-न्यारे के लिए उकसा रहा। तू मेरा संकेत समझ गया होगा... अपने बोए, सींचे खेल में सरकार चूहे-सी फँस गई चूहेदानी में। मौलवियों-सन्तों से बातचीत के ज़रिए किसी समाधान पर पहुँचने की कोशिश नाकामयाब रही..."

“हाँअँ...समाधान के लिए माँगी गई अवधि मात्र कुछ हफ्ते शेष है।” पुरोहित जी ने विचारमग्न हो टिप्पणी की। बातचीत में यह उनकी पहली भागीदारी थी। अपनी भागीदारी पर वे स्वयं चौंके। कुछ देर पहले तक उन्हें ‘ग’ की बातों में संकीर्णता की बू आ रही थी। वह बू कब कैसे स्वार्थ रस में रंग बदलने लगी, उन्हें महसूस ही नहीं हुआ।

“बस्स कुछ हफ्तों का खेल है। तोते उड़े हुए हैं जनाब ‘ख’ के। हमारी बिरादरी के बीच बच्चू रह तो रहे मगर बाघ के सामने बँधी बकरी-से!” दाहिनी आँख छोटी कर कुटिल भंगिमा बना ‘ग’ ने भौंहे उछालीं और चिर-परिचित अन्दाज़ में धुँधुआता ठहाका भरा।

पुरोहित जी की क्षण-भर पहले की भागीदारी को विवेक का हल्का-सा झटका लगा। वे अचकचा उठे। हमेशा की भाँति ‘ग’ के ठहाके में वे स्वयं को सम्मिलित नहीं कर पाए। ठहाके की तरंग शान्त होते ही ‘ग’ ने कॉफी का अगला घूँट भर बात आगे बढ़ाई—‘बकरी मिमिया रही, छटपटा रही, उतावली है। जितनी जल्दी हो सके, अपना मकान बेच-बूच अपनी बिरादरी में महफूज़ हो सके।”

“अपनी बस्ती में पहुँचने के बाद भी सुरक्षित होंगे ‘ख’?”

“बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी...फिलहाल सामने बैठे बाघ से मुक्ति मिलेगी।”

“जुगाड़ बैठा?”

“मुँह का कौर नहीं घुटका कि सट्ट पेट में। एक तो दूसरे मज़हबी का मकान। दूजे, दक्षिण दिल्ली की नामी-गिरामी बस्ती में...लाखों का मामला है, बीस माँग रहे। शेयर घोटाले के चलते वैसे ही औक्रातियों ने अण्टी के मुँह चाप रखे हैं।”

“सारी दलीलें ठीक हैं। मगर यार, एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाने के बावजूद मुझसे बीस का जुगाड़ होने से रहा। गरजू है ‘ख’... लाख-डेढ़ लाख नीचे उतर आएँगे, सोना मिट्टी के मोल फूँकने से रहे।” पुरोहित जी के चेहरे पर हताशा ने झाँई मारी।

“तू भड़भड़ाता बहुत जल्दी है। दूरंदेशी बन! अब तू सुन ही ले, इतनी बकझक तुझसे क्यूँ कर रहा हूँ? कल शाम तेरी भाभी से श्रीमती ‘ख’ कह रही थी, हाथ के हाथ सौदा पट जाए तो ‘ख’ साहब सत्रह-अट्ठारह के बीच मकान निकाल देने को राज़ी हैं। अपने मजहबियों से उन्हें सुराग मिला है कि अबकी रामनवमी पर...”

पुरोहित जी का प्रलोभन पसीजा—“समझाया नहीं भाभी ने उन्हें?”

“समझाया, काहे को इतना घबरा रहे हैं आप लोग? हम लोग हैं नहीं पड़ोस में, मजाल है जो यहाँ कोई पत्ता खड़क जाये? पढ़े-लिखे शरीफ रहते हैं, दु:ख-सुख के भागीदार...”

“क्या बोलीं श्रीमती ‘ख’?”

“सड़क के उस पार भी शरीफों का ही मोहल्ला था!”

“गलत नहीं कहा, किसी के पेट में घुसकर थाह पाना मुश्किल है।”

“तू एक काम कर।”

“बोल?”

“कल शाम खाली होगा?”

“तेरी लावण्यमयी श्रीमती मोहिनी श्रीवास्तव ने ऐन मौके किसी काम में न उलझा दिया तो!”

“खैर... घर से तू भाभी से कहकर निकल कि मि. ‘ख’ का घर देखने कल शाम तू मेरे घर जाएगा। ठीक पौने पाँच पर फोन करके मैं तुझसे स्थिति मालूम कर लूँगा कि तू मोहिनी की माया से मुक्त है या ज़ब्त।”

खूब हरियाली है ‘ग’ की कॉलोनी में। गुलमोहर और छतनार के वृक्षों से पटी, साफ-सुथरी, चौड़ी सड़कें। शान्त वातावरण, अपने में मग्न मस्त लोग। दक्षिण दिल्ली में मकान पाने का सपना पुरोहित जी के मन को गुदगुदाने लगा। ‘ग’ शुरू से ही तिकड़मी है। मामला पटाने में माहिर। क्या अचरज सौदा पट ही जाए? ‘ग’ के लिए तिकड़मी विशेषण अनुचित लगा। किसके भले के लिए सोच रहा, उसकी कौन-सी गोटी अटकी हुई है उनके पास? पड़ोस सुख पाने के अलावा?

“मोहिनी जी की माया का मन्तर सुबह खीसे में डालकर ही निकलूँगा... एक बात ध्यान में आ रही है...” पुरोहित जी कहते हुए होंठ चबाकर हिचकिचाए।

“बोल, बोल...?”

“यही कि मि. ‘ख’ से अपनी चादर के विषय में सीधे बात नहीं की जा सकती? फोन नम्बर नहीं उनका?”

“मतलब?”

“मतलब यही कि हमारे पास इतने का डौल है, इतने तक हम और हाथ-पाँव मार सकते हैं।”

“क्या, क्या...? ऐसी मूर्खता न करना भैये, बना-बनाया खेल चौपट करके धर देगा। लेन-देन की बात मैं खुद करूँगा... कि तेरी चादर में ही सौदा पट जाए। अपनी पहली और आखिरी कोशिश यह होगी, ‘ख’ को घेरने की। गरज़ उनको है। डरे हुए वे हैं। कोई हम खदेड़े दे रहे उन्हें मोहल्ले से?”

“अच्छा, अच्छा, जैसी तेरी मरजी।” पुरोहित जी ने हथियार डाले।

“और सुन, मैं जो सुबह तुझसे आयकर की अवधि कुछ और आगे बढ़वाने के लिए कह रहा था न, श्रीमती ‘ख’ की सुराग वाली बात सोचकर ही कि श्राद्ध शुरू हो रहे, खतम हुए नहीं कि नौ दुर्गे...रामनवमी है कितनी दूर? चिंगारी ने लपट पकड़ी नहीं, कि ‘ख’ औने-पौने दामों घर सुलटा बोरिया-बिस्तर बाँध लेगा। आया भेजे में?”

एक क्षण के लिए पुरोहित जी का खून निचुड़ कनपटियों में खदबदाया। ‘ग’ की लंपटगीरी-भरी बातों को वे सहन कैसे कर रहे? कोई और मौका होता तो वे ‘ग’ से दो-दो हाथ करने पर उतर आते। इस समय अनहोनी घट रही उनके संग। जुबान पर ताले डाल दिए प्रलोभन ने। सोचा नहीं कि उनके जीवन काल में वे स्वयं या उनकी औलाद पटेल नगर छूट

जाने के बाद दक्षिण दिल्ली में रहने का सुयोग पा सकेगी। वे क्यों द्वन्द्व में फँसते हैं? कोई बेचना चाह रहा है, उन्हें खरीदना है। सौदे में मोल-भाव, ऊँच-नीच होती ही रहती है। उन्होंने नहीं बेचा कौड़ियों के मोल पटेल नगर वाला मकान? कोई मन्दिर-मस्जिद विवाद ने बिकवाया? फिर बिल्ला किसी दंगई से कम न था? उसकी धमकियाँ गीदड़-भभकियाँ नहीं थीं? मन की करने पर उतर आता तो वे बीजी की पहली पुण्यतिथि भी न मना पाते। उलटा घरवाले उनकी तेरहीं कर रहे होते। अराजकता कहाँ नहीं! कहीं धर्म के नाम पर, कहीं धन के नाम पर तो कहीं सम्पत्ति के लोभ में...दीन-धर्म बहुत सोच लिया। आचरित कर लिया। अब मात्र औलादों के भविष्य के विषय में सोचें। सुरक्षित जीवन के विषय में सोचें। नैनी की खुशी के विषय में सोचें।

दीर्घ उच्छ्वास के साथ पुरोहित जी ने स्वयं को समेट दुविधा को हड़काया। 'ग' तू अपने दरवाज़े प्रॉपर्टी डीलर का बोर्ड टँगवा ले, हलकान हो रहा सरकारी नौकरी में। 'ग' को पुरोहितजी की प्रशंसा ने पुलकाया—'अपना काम, बन्धु, बिना बोर्ड लटकवाए जैकपॉट हो रहा। तू ठहरा अपना तुलसीदास दोस्त! अपन मि. 'ख' को थोड़े ही छूँछे छोड़ देंगे? डील करवाएँगे उनकी तो उनसे दो प्रतिशत... खीसे में। 'ग' ने आदतन आँख मार अँगूठा ठनकाया। द्वन्द्वमुक्त हो पुरोहित जी तेल में छनी फुलौरी-से हल्के हो आए।

"उठें...?"

"हाँ यार, चलें तेरी भाभी चिन्ता कर रही होगी, घण्टे-डेढ़ घण्टे देरी से पहुँचने की कह के कहाँ गायब हो गया?" अपनी ही रौ में 'ग' ने खड़े होते हुए मेज़ पर रखा हेलमेट झुककर उठाया—"तुम्हें कहाँ उतारूँ?"

"केन्द्रीय बस टर्मिनल से तीन सौ सत्ताईस पकडूँगा मयूर विहार के लिए। मुझे वहीं उतार दे।" डी.टी.सी. भी जमुनापार की सवारियों के लिए बसें नहीं चलाती। खटारा चलाती है, खटारा..."

मेज़ें, कुर्सियाँ पीछे छोड़ते हुए यह भी खयाल आया पुरोहितजी को, बड़े दिनों बाद कॉफी हाउस आए हैं। तनिक हाल में नज़र डुला लें। हो सकता है कोई पुराना परिचित अड्डेबाज़ दिख जाए। लेकिन दक्षिण दिल्ली में मकान के सौदे की आह्लादकारी सम्भावना की सूचना शीघ्र से शीघ्र घर पहुँचकर पत्नी-बच्चों को सुना देने का अधैर्य सँवरण न हो पाने के चलते वे कुछ खुश, कुछ उलझे हुए-से कॉफी हाऊस की सीढ़ियाँ उतरने लगे। इस वक्त परिचितों से कन्नी ही भली। नहीं तो देर में देर।

दोनों ओर पाँव लटकाकर पुरोहितजी 'ग' के स्कूटर के पीछे बैठ गए। 'ग' के गाड़ी आगे बढ़ाते ही उन्होंने सतर्कतावश उसके कन्धे को पकड़ लिया। अचानक उन्हें महसूस हुआ कि उनकी हथेली के नीचे 'ग' के जकड़े कन्धे की जगह किसी की सख़्त नुकीली बालों-भरी पीठ आ गई है। अजीब-सी अनुभूति हुई। सिहरकर उन्होंने आँखें फाड़कर 'ग' के कन्धे की ओर अविश्वास से देखा। सिर चकरा गया। ठण्डे पसीने से तर हो आए पुरोहित जी। दृष्टिभ्रम हो रहा है उन्हें या अचानक तबीयत बिगड़ रही? कहीं एंजाइना का अटैक तो नहीं?

पिछले हफ्ते छाती में हलकी-सी जकड़न की शिकायत करते ही पत्नी ज़बरदस्ती पॉकेट-वन के डॉ. गुलियानी के दवाखाने खींच ले गई थी उन्हें। ई.सी.जी. एकदम ठीक निकला था। डॉ. गुलियानी ने उन्हें सतर्क-भर किया कि वे तत्काल रक्त में कॉलेस्ट्रॉल जाँच करवा लें। इस समय न वह बाईं बाँह में पीड़ा का अनुभव कर रहे न छाती में कोई जकड़न। उन्होंने घबराकर फरफराती हवा में लम्बी साँसें खींच फेफड़ों को प्राणवायु देने की कोशिश की और 'ग' के कन्धे से हथेली खींच ली। मुँह से घुटी-घुटी सी 'हुँऊँ, हुँऊँ' निकली।

'ग' ने चौंककर गर्दन मोड़ी और गाड़ी को ब्रेक लगाया—"हैंय, क्या हुआ तुझे? क्या हुआ?"

मिचीं आँखें खोलकर पुरोहितजी घबराए हुए-से नीचे उतरकर खड़े हो गए—"कुछ नहीं, ऐसे ही अचानक कुछ तबीयत खराब हो गई। जल्दी-से-जल्दी तू मुझे मयूर विहार के लिए कोई थ्री-व्हीलर करवा दे।"

"तू पसीने से भीग रहा, तुझे यहीं किसी डॉक्टर को दिखाऊँ?" 'ग' ने परेशान होकर पूछा।

"नहीं, ठीक हूँ अब।"

"छोड़ने चलूँ घर?"

"स्कूटर पर बैठने में दिक्कत होगी। चला जाऊँगा।" 'ग' की ओर उन्होंने आँखें नहीं उठाईं।

हाथ दिखाकर 'ग' ने एक थ्री-व्हीलर वाले को रोका। थ्री-व्हीलर वाला मयूर विहार जाने के लिए राज़ी नहीं हो रहा था। 'ग' ने उसे मीटर से पाँच रुपये अधिक ले लेने का प्रलोभन दिया और उसे हाथ के सहारे से थ्री-व्हीलर में बैठा दिया।

"घर पहुँचते ही भाभी से कहना कि वे मुझे पड़ोस से फोन करके इत्तिला दे कि तू सकुशल घर पहुँच गया।" 'ग' ने चिन्तित स्वर में आग्रह किया—"कहे तो मैं कहीं स्कूटर पार्क करके तेरे संग चलूँ?"

"सुन! मुझे मि. 'ख' का मकान नहीं खरीदना।" पुरोहित के अस्फुट से शब्द अपराध-बोध से काँप रहे थे—"मैं जमुनापर ही भला।"

"मगर क्यों? ये कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहा है तू? होश में है?"

"मैं आदमी ही बना रहना चाहता हूँ...।

"तेरा दिमाग तो नहीं चल गया पुरोहित! तू आदमी नहीं तो और कौन है?" 'ग' उनकी अस्वस्थता के बावजूद अपनी झुँझलाहट नहीं दबा पाया।

पुरोहित जी को 'ग' की आवाज़ दहाड़-सी अनुभव हुई। वे थ्री-व्हीलर की सीट पर अधलेटे-से हो, ड्राइवर से काँपते स्वर में बोले—"जल्दी ले चलो, भैया...!"

मामला आगे बढ़ेगा अभी

गेट से लगी गुमटी के भीतर ज़ंग खाई कुरसी से डण्डा टिकाए, खाकी वर्दी में मीठी ऊँघ ऊँघ रहे चौकीदार तावड़े को गाली-गलौज भरे शोर ने सहसा हड़बड़ा दिया। कानों पर विश्वास करने के लिए उसने अपने ऊँघते शरीर को सप्रयास समेटा, फिर न खुलने के लिए ज़िद्दिया रही पलकों को पटपटाया और शोर को समझने की कोशिश की। वास्तव में शोर हो रहा है, कोई सपना नहीं देखा उसने। ऊँघ अभी भी उसकी रानों और जूतों में कैद पंजों में दुबकी हुई, उसकी अलसाई देह से मुक्त होने को राज़ी नहीं थी।

शोर कुछ और स्पष्ट हुआ। गालियों के कुछ कतरे हवा का रुख गुमटी की ओर होने के साथ ही इधर उछल आए। साथ ताल देती-सी तीखी 'ताड़'... 'ताड़'—किसी पतरे को पीटने जैसी आवाज़...

दिमाग सन्न-से चौंका। पतरे पर हो रही चोट ने एक पल को संभ्रम पैदा किया। खालिस ईंट-गारे की इमारतों के बीच पतरा आया कहाँ से? कुर्सी पीछे खींचकर वह फुर्ती से खड़ा हो गया। स्वतः से बुदबुदाया, "कहीं से पन आया हो! जो हो रहा पक्का। अपनाच कॉलोनी में... बाप रे!" उसने भुजाएँ मरोड़कर सुस्ती की आखिरी किस्त झटकी और गुमटी से बाहर निकल आया। सहसा खयाल आया कि ज़रा वक्त पता कर लें। बाईं कलाई पर बँधी धुँधली डायलवाली घड़ी उसने गौर से देखी। डेढ़ बजने को था। इतनी रात गए यह शोर?

ठमककर उसने शोर की दिशा में टोह ली। शोर उसे तीन नम्बरवाली इमारत के बेसमेंट से आता हुआ महसूस हुआ। गेट से तीन नम्बरवाली इमारत का फासला बमुश्किल तीन-चार मिनट पैदल का होगा। वह हुड़ककर सरपट भागा। नीचेवाले घरों में शोर पहुँच चुका था। कुछ फ्लैटों में जमघट हो चुकी थी। कई सोई बालकनियों की रोशनियाँ उसके दौड़ते-न-दौड़ते जग उठीं। कुछ प्रश्न अकुलाकर उसकी ओर कूदे।

"गुरखाऽऽ...क्या हुआ?"

"कौन गाली बक रहा?"

"कोई क्या तोड़ता? हम सोने को नईं सकता?"

उसने रुककर किसी को कोई जवाब नहीं दिया। पर जैसे ही वह तीसरे नम्बरवाली इमारत के बेसमेंट में दाखिल हुआ, सामने का दृश्य देख उसकी आँखें फट गईं।

सामने मोट्या था। मोट्या के हाथ में एक लम्बी लपलपाती सरिया थी। उसी सरिये से वह सक्सेना सा'ब की झक्क सफेद 'टोएटा' पर निर्ममता से प्रहार किए जा रहा था। साथ ही उगल रहा था जुगलबन्दी करती भद्दी, अश्लील गालियों की बौछार।

पहले से ही सहमे-से खड़े चार-पाँच लोगों की उपस्थिति से लापरवाह मोट्या की नज़र जैसे ही उस पर पड़ी, उसने पलटकर सरिया उसकी ओर तान लिया, "आगे नहीं बढ़ना होऽऽ...नईं तो खोपड़ी तुकड़े-तुकड़े करके छोड़ूँगा...बोत अच्छा घर में नौकरी लगाया। अब्बी, जाके वो बड़ा आदमी को बोल!...बोल उसको, अबी निच्चू उतर के आने कू! कुतरे का औलाद नईं मैं गर मा...को खल्लास नईं किया। धक्का देके निकाला न मेरे कू दरवाजे से? काय कू? पूरा पगार माँगा न इसी वास्ते? काट! बोलना, अब्बी अच्छा तरीके से खाड़ा काट। देखता मैं... बरोबर देखता...भोत धाँधल सेन किया। अब्बी सिद्धा होएगा वो सेठिया..."

मोट्या कुछ डग पीछे हटकर फिरकी-सा घूमा और अपनी पूरी ताकत निचोड़ सरिया कार की विंडस्क्रीन पर दे मारा।

'छन्नाक्!' का शोर उठा। किरचें बिखरीं नहीं, मसहरी की शक्ल में टँगी रह गईं। गाड़ियों के सहारे टिके हुए लोग मोट्या का यह विध्वंसक रूप देख भयभीत हो उन्हीं गाड़ियों की आड़ में दुबक गए।

तावड़े अपनी जगह पर से बिना हरकत किए चीखा, "मोट्या...!" उसके दाँत तनाव से भिंच गए। भिंचे दाँतों के सुराखों से गुज़रती सिसियाती आवाज़ में उसने मोट्या को चेतावनी दी, "फेंक दे सरिया, बेअकल...मैं बोलता फेंक दे, नईं तो सक्सेना सा'ब तेरी बोटी-बोटी अपने जाड़िया कुत्तों को खिला देगा।"

"चुप्प बे चम्मच!" मोट्या ने होठों पर बजबजा आए थूक को 'पिच्' से बगलवाली फिएट पर थूका, फिर गरदन को झटका देकर आँखों तक छितरा आई लटों को पीछे फेंकने की कोशिश की, "धौंस नहीं खाने का मैं, बोत चमकाया इस साली की बाडी को...अब्बी देख हाल! अक्खा कालोनी उठ गया, वो सोता क्या उप्पर? नईंऽऽ...सोता नईं, डर के ऊप्परच बइठा। आने तो दे निच्चू, खोपड़ी नईं तोड़ा उसका तोऽऽ...वो जाड़िया मेम सा'ब पन आएगी, मैं उसको भी नईं सोड़ेगा, नईं सोड़ेगा। सा'ब के सामने कइसी भीगी बिल्ली सरखी बइठी होती? बोलने की नईं सकती होती, ताप (बुखार) में होता मैं?"

मोट्या गाड़ी का पोर-पोर पीटे डाल रहा था। जैसे ही वह उसे धर दबोचने के लिए पैंतरा बदलता, पता नहीं कैसे मोट्या को आभास हो जाता और वह पलटकर उसके सामने सरिया तान लेता। निरुपाय वह सिर से लेकर पाँव तक सिवाय काँपने के कुछ नहीं कर पा रहा था।

कितने नौकर काम करते हैं इस सोसाइटी में। रोज़ निकाले जाते, रोज़ रखे जाते। अक्सर यहाँ काम करनेवाले लोगों से ही नए नौकर ढूँढ़कर ला देने के लिए कहा जाता। उससे भी कहा गया। न जाने कितनी बाइयों और छोकरों को उसने किसी-न-किसी के घर

काम पर रखवाया। ऐसा दुःसाहसी विद्रोही स्वरूप कभी किसी का नहीं देखा। ज़्यादतियों का रोना सभी रोते, मगर मुँह पर उँगली दिए, एक सीढ़ी छोड़ दूसरी पकड़ लेते। समझते, जल में रहकर मगरमच्छ से वैर सम्भव नहीं। प्रेत-पिशाच लग गया इस हरामखोर को या मगज़ फिर गया? सा'ब लोगों का गुस्सा नहीं पता अभी इसको। गाड़ी की दुर्दशा देखकर सक्सेना सा'ब पगलाया साँड़ हो उठेगा...नक्कीच।

वह मोट्या की दुर्दशा की कल्पना कर सूखे पत्ते-सा काँप उठा। कैसे रोके नादान को? हाथ धरने दे तब न।

...मोट्या के बूढ़े नाना का मिचमिची आँखोंवाला, झुर्रियों-पटा, ताम्बई करुण चेहरा तावड़े की आँखों के सामने कौंध गया।

पेरी क्रॉस रोड के फुटपाथ पर खिले गुलमोहर के छाँवदार पेड़ के नीचे एक जर्जर छतरी को भारी पत्थर के सहारे अटकाए, टाट के मटमैले टुकड़े पर चमड़े की कतरनों का ढेर पसारे, जंग लगे डिब्बे में कील-काँटे सरियाए वह बूढ़ा मोची राहगीरों की चप्पलें-जूते गाँठा करता। उस दिन उसकी बरस-भर पुरानी कोल्हापुरी चप्पल का अँगूठा बीच रास्ते में उखड़ गया और मोची की तलाश में इधर-उधर भटकती उसकी नज़र अचानक मोट्या के नाना पर पड़ी। वह पाँव घिसटता सड़क पार कर उसी के पास चप्पल बनवाने पहुँच गया। बूढ़े ने छूटते ही पूछा, "सिलाई मारूँ कि किल्ला ठोंकूँ?"

"सिलाई मारना।" उसने मज़बूती के खयाल से उसे हिदायत दी। बूढ़े ने डोरा खोजते हुए पूछा, "सा'ब, आप मिलिट्री में काम करते हैं?"

"वॉचमैन हूँ।" उसने गर्व से अपनी खाकी वर्दी को आत्ममुग्ध नज़र से छुआ और बगैर बूढ़े के जिज्ञासा किए अपने बारे में उसे बताने को उत्सुक हो आया कि वह पचीस-पचीस माले की गगनचुम्बी इमारतोंवाली कॉलोनी में वॉचमैन है। खूब मोटे सेठों की रिहायश है। शत्रुघ्न सिन्हा और मौसमी चटर्जी भी वहीं रहते हैं। मौसमी मेरे को भौत मान देती। उसके घर बहादुर को मैंने काम को रखा।

तावड़े की ऊँची पहुँच सुनकर बूढ़ा उसकी बातों से प्रभावित हुआ। इसका अन्दाज़ा तावड़े को इस बात से हुआ कि बूढ़े ने अँगूठे की मज़बूत सिलाई के उपरान्त चप्पल की अन्य तनियों को भी पूरी ताकत से खींच-खींचकर उनकी मज़बूती परखी और बगैर उसकी इजाज़त लिये उन तनियों पर भी एकाध टाँके लगा दिए जो अपेक्षाकृत कुछ कमज़ोर लगीं और किसी भी समय धोखा दे सकती थीं।

"कितना कमा लेते दिन-भर में?" उसने अँगूठा गँठवाया है, पैसे भी वह अँगूठे के ही देगा। सोचते हुए, परोक्ष में उसने स्वर में सामर्थ्य-भर सहानुभूति उड़ेलकर बूढ़े से पूछा।

"कमाई किदर सा'ब?" हताश स्वर में अपनी मिचमिची आँखें उसकी ओर कष्ट से उठाकर बूढ़े ने प्रतिप्रश्न किया, "बोत मुश्किल से दोन-ढाई रुपया किल्ला-काँटा का खर्चा निकाल करके बचता। एरियाच ऐइसा, पैसेवाले सा'ब लोग चप्पल-जूते मरम्मत नईं करवाते,

टूटे कि ताबड़तोड़ नया खरीदते। ताकत होती तभी मैं फेरी लगाता होता। जूना-पुराना चप्पल-जूता खरीदकर उसका मरम्मत-बिरम्मत करके स्टेशन रोड का फुटपाथ पर बेच लेता होता। ऐसा बनाता होता...ग्राहक को एकदम नया सरखा दिखता। कमाई तभी होती, अब्बी तो खाने का पन नईं पुरता।" बूढ़े ने निःश्वास भर अपने पैबन्द उघाड़े और चप्पल उसके पाँव की ओर बढ़ा दी। आगे बोला, "जास्ती चलने-फिरने को नईं सकता न। इसी के वास्ते इदरीच बैठता।"

तनिक सहानुभूति दिखाने पर बूढ़े ने यह भी बताया कि गुज़ारा होता नहीं, करना पड़ता है। घर पर एक नाती है। पन्द्रह का हो रहा, काम-धाम कुछ करता नहीं। बेटी थी उसकी माँ। नहीं रही। नाती जनमते ही दामाद ने उसे छोड़कर दूसरी शादी बना ली। जवान बेटी कब तक सिर पर बैठाए रखता! बिरादरी के एक दोहाजू लड़के के संग उसे बैठा दिया। दोहाजू नौवरा (दूल्हा) बच्चा रखने को राज़ी नहीं हुआ, सो नाती को उसे अपने ही पास रखना पड़ा। नाम है—मोट्या। बड़ी कोशिश से उसे 'मुनसीपालिटी' की शाला में छठी 'किलास' तक पढ़ाया। आगे वह पढ़ने को राज़ी नहीं। शाला से भाग आता। एकाध घर में भांडी-कटका के काम पर रखवाया, मगर हर बार काम छोड़-छाड़कर बैठ जाता। अड़ा हुआ है कि औरतोंवाले काम वह नहीं करेगा। मोचीगिरी उसे पसन्द नहीं। जूते गाँठना उसे दुनिया का सबसे घटिया काम लगता है। बूढ़े ने बड़े जतन किए कि वह डब्बा-बाटली खरीदने और बेचने के धन्धे में ही लग जाए, पर वह भी एकाध रोज़ भटक-भुटककर छोड़ बैठा, यह कहकर कि डब्बा-बाटली का धन्धा बहुत मन्दा चल रहा और मुनाफा एकदम नईं। ऊपर से लोग स्वयं ही महीनों का भंगार (कबाड़) इकट्ठा कर, उसे गाड़ी में भरकर, सीधा दुकान पर ले जाकर बेच देते हैं।

"उधर मुनाफा जास्ती मिलता! दस पैसा भी काय कू छोड़ें? पेट्रोल मँगता तो फुँकने दो न।"

"समझ नहीं पड़ता कि छोकरे के नसीब में क्या है?" बूढ़े ने उसके हाथ से, जो दे दिया सो लेते हुए भर्राए गले से अपनी बेबसी ज़ाहिर की और उसके पाँव में चप्पल फँसाते-न फँसाते एकाएक चिरौरी-भरे स्वर में हाथ जोड़ गलगलाया, "बोत मेहरबानी होगी, सा'ब। छोकरे को किदर भी काम को लगाओ!"

बूढ़े की प्रार्थना के साथ ही अचानक उसे सक्सेना सा'ब का आग्रह याद हो आया, जिसे वे गेट से निकलते हुए, उसका सैल्यूट स्वीकारते, पिछले पाँच-छह दिनों से लगभग रोज़ ही दोहरा रहे थे कि उन्हें एक गाड़ी धोनेवाले लड़के की सख्त ज़रूरत है, जो टाइम का पाबन्द हो। यानी उनके निकलने से पूर्व ही उन्हें उनकी दोनों गाड़ियाँ धुली-धुलाई लकदक मिलें जिसमें से सफेद 'टोएटा' उनकी है और उसी का इस्तेमाल वे अपने आने-जाने के लिए करते हैं। 'प्रीमियर पद्मिनी' उन्होंने अपनी मेम सा'ब के उपयोग के लिए रख छोड़ी है। उसमें सफर करना उनकी शान के खिलाफ है। 'टोएटा' कभी गैरज में हो तो मजबूरी होती है।

गाड़ी धोनेवालों की वैसे कॉलोनी में कोई कमी नहीं, पर सुबह सभी को एक ही साथ, एक ही समय अपनी गाड़ियाँ धुली-धुलाई चाहिए। यह काम अधिकतर वहीं काम करनेवाले

रामा करते। एक साथ कई-कई घरों की गाड़ियाँ धोने का काम पकड़ लेने के चलते अक्सर गाड़ियाँ समय से नहीं धुल-पुँछ पातीं। पिछले रामा को सक्सेना सा'ब ने असन्तुष्ट हो, काम पर से निकाला इसी वजह से। उनके निकलने का समय हो जाता और रामा बाल्टी और पोंछा लिये गाड़ी पर फटका फेर रहा होता। बगैर धुली गाड़ी में जिस दिन भी वे फैक्टरी पहुँचे, कोई-न-कोई लफड़ा वहाँ मौजूद पाया।

उसने सोचा, परिवार के चप्पल-जूते आए दिन घिसते-फटते रहते हैं। बूढ़ा लिहाज़दार है। उसने बूढ़े से कह दिया कि कल ठीक नौ बजे सुबह वह मोट्या के साथ इसी जगह उसकी प्रतीक्षा करता हुआ मिले।

बूढ़े मोची ने कुल जमा चार दाँतों से गद्गद होते हुए उसे बहुत सारे आशीष वचनों से लाद दिया।...

चोर बाज़ार से उन्हीं के स्तर की टी-शर्ट खरीदकर पहने, दीनता-हीनता से कोसों दूर मोट्या से मिलकर सक्सेना सा'ब काफी प्रसन्न हुए।

तावड़े और मोट्या—दोनों को ही उन्होंने आश्वस्त किया कि सामान्यतः कार धोने के लिए जितनी पगार कॉलोनी में औरों को मिलती है, उससे वे पचास रुपये ऊपर देंगे; मगर इस शर्त पर कि मोट्या औरों का काम चोरी-छिपे नहीं पकड़ेगा। नहीं पकड़ेगा तो उसकी गुज़र कैसे होगी? मात्र दो गाड़ियाँ धोकर किसी का पेट भरा है? दूसरों का काम करने देने में उन्हें आपत्ति है तो शेष समय में वे उसे किसी और काम में लगा दें।

"ठीक है, कुछ रोज़ वह घर के ऊपरी कामों में मदद कर दे।" उसके सौ रुपये वे अलग से दे देंगे। साथ ही, उन्होंने यह प्रलोभन भी पेशगी टिका दिया कि मोट्या अगर उनके यहाँ ईमानदारी से डटकर काम करता रहा और टिका रहा, तो वे उसे साल-डेढ़ साल बाद निश्चय ही अपनी फैक्टरी में लगवा देंगे। तब उसे ढाई सौ रुपये महीने पगार मिला करेगी। मगर ध्यान रहे, अपशकुन के अलावा प्रतिष्ठा का प्रश्न है। अन्यों की दुहाजू गाड़ियाँ उनकी 'टोएटा' के मुकाबले जगमगाती-इतराती गेट से तैरती न निकलने पाएँ। क्रीम-पॉलिश की कमी नहीं। जी भरकर इस्तेमाल करे।

मोट्या भी मर्दोंवाला काम पाकर खुश हुआ।

बूढ़ा उसके एहसान की दुहाई देता न थकता। जब कभी तावड़े की घिसी चप्पल या खस्ताहाल जूतों का तलुवा उखड़ता, लाख ऊपरी आग्रह के बावजूद बूढ़ा उससे बनवाई न लेने की हठ न छोड़ता।

"तुम मेरा छोकरा सरखा...बोत-बोत उपकार किया अपने ऊपर, मोट्या काम से बोत खुश है।" वह स्पष्ट लक्ष्य करता कि कृतज्ञ बूढ़े की चीकट धोती का एक छोर अनायास उसकी मिचमिची आँखें सोखने लगता। अभिभूत तावड़े का चेहरा कड़क चाय-सा रंग पकड़ लेता।

उस रोज़...उसकी दिनवाली ड्यूटी थी। कोई बारह-साढ़े बारह का समय रहा होगा। सहसा उसकी नज़र तेजी से गेट से बाहर होते मोट्या पर पड़ी। उसने गुमटी के भीतर से ही उसे गुहार लगाई, "कहाँ लपका जा रहा है, हाँ! दिखता नहीं आजकल तू?"

मोट्या ठिठककर पलटा और उसके करीब आकर खड़ा हो गया, "इदरीच, थोड़ा काम है।"

"बूढ़ा नाना कइसा है? आजकल मैं न्यू टाकीज के पीछे से निकलकर डियूटी को आता..."

"मस्त।"

"और तू?"

"मैं पन मस्त!" मोट्या संक्षिप्त उत्तर दे, चलने को तत्पर हुआ। उसने स्पष्ट लक्ष्य किया कि वह कहीं जाने की हड़बड़ी में उससे गप के मूड में नहीं। वह उससे बतियाने को उत्सुक था। उसके सा'ब और उनकी मेम सा'ब के दरम्यान चल रहे मनमुटावों के विषय में भेद लेने की खातिर। इधर कॉलोनी में उड़ा हुआ था कि सक्सेना सा'ब किसी शायरा के चक्कर में हैं और दूसरी शादी करने के लिए मेम सा'ब से अलग होना चाहते हैं, मगर मेम सा'ब उन्हें तलाक देने को राज़ी नहीं।

"चलता मैं...जरा घाई (जल्दी) में है।" मोट्या ने बेसब्री दर्शाई।

"ठैर ना, काय की घाई?" उसने मोट्या के कन्धे से लटका एयरबैग खींचकर उसे रोका, "इतना बड़ा बैग ले के?"

"मेम सा'ब ने 'मॉडर्न वाइन शॉप' से ताबड़तोड़ एक क्रेट चिल्ड बियर लाने कू बोला। वोईच इसमें भरके लाएगा। आज किट्टी पार्टी है, बोत मेम सा'ब लोग घर में आया। मेरे को देरी होएँगा न तो बोत वान्दा होएँगा।" मोट्या लगभग अपने को छुड़ाता हुआ तीर-सा गेट से बाहर हो गया।

वह अनायास अपने चेहरे पर फैलती अर्थपूर्ण मुस्कराहट को बड़ी देर तक खुदी हुई महसूस करता रहा।

दो-ढाई घण्टे के उपरान्त, पार्टी के ताम-झाम से निवृत्त होकर मोट्या उससे मिलने आया तो उसकी आन्तरिक प्रसन्नता पके गूलरों-सी दरकी हुई अनुभव हुई।

खोदने पर उसने बताया कि दोपहर में वह पूरे समय मेम सा'ब की सेवा में होता है। सिगरेट खत्म हो गई है तो ला देना, बियर के क्रेट लाना और फटाफट बोतलों को ठिकाने लगाना। 'नीलम' से सींक-कबाब या 'फिश रोल्स' ले आना, लिंकिंग रोड जाकर 'ब्यूटी आर्ट' में मेम सा'ब के कपड़े धोने के लिए डाल आना आदि। मेम सा'ब दोपहर का खाना ही उसे नहीं खिलातीं, खासी टिप भी थमाती रहती हैं। पूरे पैसे वह ईमानदारी से नाना के हाथ में रख देता है। ज़रूरत ही नहीं होती उसे। हाँ, मेम सा'ब ने एक हिदायत ज़रूर दे रखी है कि यह सब उनका व्यक्तिगत मामला है। किसी को उनकी दिनचर्या की कानोकान खबर नहीं लगनी चाहिए।

"फिर अपने को क्या, अपने को फकत अपने काम से मतलब।" मोट्या ने सयानेपन में डूबकर टिप्पणी की। हालाँकि उसे वह घर का सारा कच्चा-चिट्ठा ब्यौरेवार बता गया। मगर वह शायद इसलिए निःसंकोच हुआ कि उसकी नौकरी लगी ही उसके प्रयत्नों से थी और वह किन्हीं भी परिस्थितियों में उसका अहित नहीं चाहेगा। मेम सा'ब की घरेलू अशान्ति से मोट्या विचलित नज़र आया। मोट्या की बातों से यह भी ज़ाहिर हुआ कि उसके मन में मेम सा'ब के प्रति सम्मान ही नहीं, ममत्व-भाव भी पैदा हो गया है और विरोध में सा'ब के प्रति उतनी ही तीव्र प्रतिशोधी कड़वाहट।

उसने पहुँचे हुए अनुभवी की तरह गुरु-मन्त्र पिलाया "ठीक कहता है तू, तेरे को क्या? हाँ...फकत काम से मतलब, पगार से मतलब। किसी के लफड़े में नईं पड़ने का। हाँ! अऊर ये बिल्डिंग में रहनेवाले मियाँ-बीवी अलगीच होते। इनका कोई पन काम एक-दूसरे की मालुमात में नईं होता। फकत इतनाच कि ये मियाँ-बीवी हैं, अऊर एकच घर में रहते।" उसने मोट्या के निश्छल किशोर मन के अभावों और उसकी ममत्व की प्यास को मेमसा'ब की ओर उन्मुख न होने देने के उद्देश्य से चेतावनी दी, "नौकर घर-घर नाता जोड़े तो पिच्छू वो नौकरी छूटने पर जिन्दा नईं बचने का!"

मोट्या उसकी सीख को बेअसर भाव से मुँह बाये, खामोशी से सुनता रहा।

मुश्किल से आठ-दस दिन हुए होंगे कि गेट पर उसके सैल्यूट की उपेक्षा करते हुए सक्सेना सा'ब ने सख्त आवाज़ में उससे पूछा, "मोट्या कहाँ है?"

वह कार की खिड़की से तनिक बाहर को झाँकती उनकी अकड़ी गरदन के करीब आकर खड़ा हो गया विनीत-सा, "काम पर नहीं आया क्या, सा'ब?"

"दो रोज़ से बास्टर्ड ने शक्ल नहीं दिखाई। लगता है, हरामज़ादे को मेम सा'ब से ज़रा ज़्यादा ही टिप मिलने लगी है, तभी याद नहीं रख पा रहा कि मैं बगैर धुली गाड़ी के बाहर नहीं निकलता।"

वह उनके खौलते क्रोध से सकपका-सा उठा। समझ में नहीं आया कि क्या कहे।

"छोकरा सिद्धा है, सा'ब! जरूर बीमार-विमार पड़ा होएँगा। पता करता मैं...'

"पता करो!" उनका स्वर चट्टान पर हथौड़े-सा टनका। गाड़ी उसकी औकात रौंदती सर्र-से गेट से बाहर हो गई।

वह मन-ही-मन ताव खाकर रह गया। अजीब हैं ये सा'ब लोग! एक तो इन्हें नौकर खोज कर दो, ऊपर से उसका अता-पता भी रखो। कुछ हो गया तो सारा दोष उसी पर।

मोट्या के काम पर न आने की वजह उसे सरासर बूढ़े की अस्वस्थता लगी। वह आशंकित हो उठा। ज़रूर बूढ़ा मरने-मराने को होगा। बूढ़ी हड्डियाँ आखिर कब तक घिसटतीं? नहीं तो मोट्या खाड़ा करनेवालों में से नहीं। कम-से-कम वह मेम सा'ब को तो आकर बोल के जाता। कोई खबर नहीं, इसका मतलब है कि...और अगर सचमुच बूढ़े को कहीं कुछ हो गया तो मोट्या इस संसार में एकदम अनाथ हो जाएगा...

मोट्या के अचानक अनाथ हो जाने की भयावह कल्पना से तावड़े अन्यमनस्क हो

उठा।

मुश्किल से उसका घर खोज पाया।

जिस बात की आशंका थी उसके विपरीत, मोट्या को खटिया से लगा, बुखार में तपता पाया। बूढ़ा धन्धा छोड़कर उसके सिरहाने बैठा मिला। उसके माथे पर ठण्डी पट्टियाँ चढ़ाता। उसे देखकर निर्जीव-से हो रहे मोट्या और चिन्तित नाना के चेहरे पर दिप्प-से रौनक फूटी।

"मेम सा'ब बोत हैरान होंगी न! नाना से मैं बोला कि तुमको खबर देने से मेम सा'ब को पता पड़ जाएगा कि मैं ताप से हूँ। पड़ेगा तो वो नक्कीच मेरे कू देखने कू आएगी...लई प्रेमालू हय वो...पन नाना...मेरे को छोड़ के हटताच नईं।"

वह सकते में आ गया, मेम सा'ब के प्रति मोट्या की माया और विश्वास देख।

बड़ी देर तक उसके निकट बैठा वह उसकी बीमारी और दवा-दारू के बारे में बाबा से बतियाता रहा। उसे ढाढस बँधाया। 'फ़्लू' कमज़ोर कर देता है। ज़बरदस्ती कुछ करने की कोशिश न करे। जल्द ठीक हो काम पर पहुँचे। हिम्मत ही नहीं पड़ी कि सक्सेना सा'ब के चढ़े तेवरों के विषय में बता दे और यह भी कि जिस मेम सा'ब की याद में वह अधमरा हुआ जा रहा था, वे एक बार नहीं बल्कि कई-कई बार उसके सामने से सर्र-से गुजर गईं। किसी ने पूछा तो वे हैं सक्सेना सा'ब। वह भी अपनी गरज के चलते। क्योंकि वे बगैर धुली गाड़ी के घर से बाहर पाँव नहीं देते।

गाड़ी के न धुल पाने की नाराज़गी के साथ-साथ उसे सक्सेना सा'ब के मोट्या पर अधिक भड़के होने की एक और वजह लगी, जो उनके कटाक्षपूर्ण लहज़े से साफ ज़ाहिर हुई कि मोट्या के द्वारा मेम सा'ब की विशेष खिदमत उन्हें सख्त नागवार गुज़र रही है।

मोट्या की उम्र में कई छोकरे अनुभवों के आँवें में पक-तप के लाग-लपेट के फंदे में न आते। मगर दस घरों का काम छोड़-पकड़कर ही यह दुनियादारी उनमें रच-बस पाती। मोट्या का बमुश्किल यह दूसरा घर है। वह नहीं जानता कि इमारतों में रहनेवालों का घर कभी उसका अपना घर नहीं हो सकता। मोट्या की मेम सा'ब के प्रति प्रगाढ़ता पहले भी उसे अखरी थी और उसने उसे सतर्क किया था, किन्तु मोट्या के कोमल मन के मुगालते को दोबारा तोड़ना ज़रूरी लगा। सुबह सक्सेना सा'ब से हुई भेंट का विवरण उसने अनिच्छा के बावजूद मोट्या को ज्यों-का-त्यों कह सुनाया।

सुनकर मोट्या का चेहरा बुझ गया, "सा'ब तो ऐइसा हैइच पन...मेम सा'ब...!"

ललाई आँख फेरकर, वह टकटकी लगाए बड़ी देर तक छत के पतरे को ताकता रहा। मेम सा'ब उसे अपनी छोटी-सी ज़िन्दगी में देखी गई उन तमाम औरतों से भिन्न लगीं, जो मोहल्ले के रिश्ते से उसे अपनत्व दे दुलराती रहीं...

आँखों से छत का पतरा एकदम ओझल हो गया। इतनी लबलबा आईं, जैसे फूल खुँपटने को अपनी ओर लचाई हुई टहनी अचानक डाल समेत चरमराकर पेड़ से अलग हो गई हो।

मेम सा'ब की बातें मथने लगीं—'मुझे तो बस कहने-भर को घर मिला है। यह सारी

मौज-मस्ती तो वक्त-कटी है। सा'ब कहने को पति हैं और मैं कहलाने को बीवी। अक्सर जो देरी से घर आते हैं न, उसी छिनार के फ्लैट में रहते हैं। नया फ्लैट, नई गाड़ी खरीद के दी है उसे। वही हरे रंगवाली गाड़ी।'

"किसी रोज ड्राइवर की आँख बचाकर मैं इंजिन में किलो-भर शक्कर डाल के छोड़ेगा, गाड़ी की छुट्टी!"

उसकी बातें सुनकर मेम सा'ब खिलखिलाकर हँस पड़ी थीं, 'तू इतना खयाल रखता है मेरा, तुझे तो मैं गोद ले लूँगी।'

वह उनके अपनेपन से खिल आया था। अक्सर छूट लेने लगा था उन्हें 'मम्मी जी' कहकर पुकारने की! आपत्ति नहीं की उन्होंने। कोई औलाद भी तो नहीं थी उनके!

चलते समय उदास मन से मोट्या बोला कि वह सा'ब और मेम सा'ब को उसके बिस्तर से लगे होने की खबर कर दे और खबर न कर पाने की मजबूरी भी स्पष्ट कर दे। ठीक होते ही वह काम पर पहुँच जाएगा।

उसने सा'ब और मेम सा'ब—दोनों को ही अलग-अलग खबर कर दी। सा'ब ने अविश्वास से 'हुँह' भर किया। मेम सा'ब उसके बुखार की बात सुनकर सचमुच चिन्तित हो उठीं—"उससे कहना कि जब तक वह एकदम ठीक न हो जाए, काम पर न आए।" फिर आहिस्ता से आत्मीय स्वर में बोलीं, "दवा-दारू की खातिर रुपयों-पैसों की ज़रूरत हो मोट्या को, तो ले जाना मुझसे।"

दे देने और माँग लेने के लिए कहने में बड़ा फर्क है नीयत का। उसे मेम सा'ब की कुछ क्षण पहले की सहानुभूति घड़ियाली आँसू प्रतीत हुई। पर मोट्या है कि मेम सा'ब पर अँकुआई अपनी आस्था को लेशमात्र इधर-से-उधर नहीं खिसकाना चाहता।

सातवें रोज मोट्या पूर्ववत् अपने काम पर पहुँचा तो वापसी में उससे मिलता हुआ गया।

उसने मिलते हुए जाने के लिए कहा ही था; क्योंकि पिछले दिनों उसने दूसरे वॉचमैन से सुना कि सक्सेना सा'ब को गाड़ी धोने के लिए एक नया छोकरा चाहिए। उसे चिन्ता हुई, कहीं ऐसा न हो कि मोट्या काम पर लौटे और सक्सेना सा'ब उसे काम से बरखास्त कर दें। किन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। बस, सक्सेना सा'ब ने उसे चेतावनी-भर दी कि आइन्दा अगर वह बीमार पड़े तो पहले से ही काम पर न आ पाने की खबर करवा दे, ताकि वे अनावश्यक प्रतीक्षा न करें।

मोट्या की दिनचर्या ने हमेशा की तरह अपना ढर्रा पकड़ लिया। लेकिन पहली की रात को महीने का हिसाब लेकर वह घोर असन्तुष्ट हो उसकी खोली पर पहुँचा।

ठगे जाने की निस्सहायता, अवमानना के आघात से छलनी हो अनायास उसकी अब तक कमजोर पीली आँखों में पिघलने लगी, "मेरा सात दिवस का खाड़ा (नागा) काट लिया...फरेब करके थोड़ा मैं घर पर मस्ती मारता होता! खाड़ा के वास्ते मैं सा'ब से लड़ाई किया तो वो मेरे को झापड़ चढ़ा के दफा हो जाने कू बोला...धक्का मारके घर से बाहर कर

दिया मेरे को। सब समझता मैं, काय का वास्ते काम पर से हकाला, सा'ब ने...

"उसका मरजी होता, मैं उसका रखैल का घर में चौबीस घण्टे के वास्ते काम कू जाऊँ। मैंने साफ ना पाड़ी होती...बोला होता, फकत गाड़ी धोएगा...ऊपर का काम करेगा...खाना-बीना नईं पकाएगा।

"जबी झापड़ मारा...मेम सा'ब पासमेच खड़ी होती...धक्का देके बाहर किया, जबी पासमेच खड़ी होती...सा'ब का हाथ नईं पकड़ने को सकती थी? नईं बोलने को सकती थी कि मैं ताप में होता? कितना काम मैं फोकट मेंच करता होता!"

"छोड़ न, जो हुआ सो हुआ। ये सा'ब लोगों से झगड़ा-बिगड़ा करके फायदा नईं।"

"मैं देखेगा...दूसरा छोकरा कइसा गाड़ी धोएगा...छूने को नईं सकता कोई गाड़ी को।" एकाएक निरीहता झटक उसने चुनौती से भरकर कहा।

बड़े अपनेपन से तसल्ली देते हुए तावड़े ने समझाया, "एक काम छोड़ो हजार मिलता, काय को मगज खराब करता अपना? मैं एकाध दिन में तेरे को नए काम पर लगाएगा। ईमानदार नौकर का बोत डिमाण्ड हय...छोड़! ये सा'ब लोग से उलझ के फायदा नईं, फिर मेम सा'ब का क्या? हय तो वो उनका बीवीच, कइसा बोलेगी सा'ब के खिलाफ? हाँ! उनकाच पैसा पर मस्ती मारती न! इतनाच तकलीफ है तो सा'ब को छोड़कर काय को नईं चली जाती?"

वह सब समझ रहा था। सा'ब के क्रूर व्यवहार से मोट्या को जितना क्षोभ है, उससे कहीं ज़्यादा गहरी ठेस लगी है मेम सा'ब की अप्रत्याशित लगातार चुप्पी से। चुप्पी का अर्थ है, वे भी गलत का साथ दे रही हैं!

मेम सा'ब के संदिग्ध व्यवहार की उसके द्वारा की गई आलोचना पर मोट्या पहली बार खामोशी साधे रहा। कुछ देर बाद उठा, कमीज़ की बाँह से आँखें पोंछीं, "चलता मैं।"

उसने तो नहीं, पर उसकी बीवी ने ज़रूर मोट्या से कुछ देर और बैठने का आग्रह किया और लगभग ज़िद-सी की कि काफी रात हो रही है, वह खाना खाकर जाए। पर मोट्या था कि बिल्कुल नहीं रुका। खोई-खोई-सी मनोदशा में लिपटा खोली से बाहर हो गया, "नाना राह देखता होएगा!"

पिछली बातों और घटनाओं का क्रम अचानक हो रहे इस विस्फोट से जुड़ गया। तावड़े चौंका।

उसके आस-पास उबलती, खौलती, तमतमाती धमकियों की भीड़ इकट्ठी हो गई। वे धमकियाँ उसे ललकार रही थीं, धमका रही थीं, धिक्कार रही थीं, चुनौती दे रही थीं कि चौकीदार रखने का मकसद? एक मामूली-सा छोकरा ढाई-तीन लाख की गाड़ी का भुरता बनाए दे रहा और वह है कि रात पाली के बावजूद आराम से गुमटी में खर्राटे भर रहा? अरे, इन लुटेरों की मिलीभगत है। इतनी बेरहमी से गाड़ी पीट-पाट डिब्बा बनाकर रख दिया छोकरे ने! अक्खा कॉलोनी को सुनाई दिया, ये हरामखोर कान में तेल डाल के सोता? डिसमिस करने कू माँगता सोसाइटी को...इतना पगार हम लोग गुरखा लोगों को काय के

वास्ते देते? लुटने के वास्ते?

उसे आश्चर्य हुआ। मोट्या के हाथों में लपलपाते सरिये ने उपस्थित भीड़ को निष्क्रिय कर रखा था, पर उनकी ज़बानें बरछी-भाले-सी प्रहार-पर-प्रहार किए जा रही थीं। किसी का साहस नहीं हो रहा था कि चार फीट के बित्ते-से छोकरे के हाथ से लपककर सरिया छीन ले। नुकसान ऐन उनकी नाक के तले हो रहा, परन्तु जान जोखिम में डालने का काम उन शूरवीरों का नहीं। ठीक ही तो कह रहे—चौकीदार काय के वास्ते रखा?

"साले सब हिजड़े..." मन-ही-मन उसने करारी गाली उछाली उन सबकी ओर, और मोट्या को थोड़ा असावधान पाकर चील-सा झपटा उसकी ओर, मगर उसकी फुरती अपनी ओर पलटकर तन गए आक्रामक सरिये की वजह से किटकिटाती ठिठक गई। उसका खिसियाया चेहरा मोट्या पर बेअसरदार चेतावनियाँ उगलने लगा। उसके भीतर तमाम दस्तकें हो रहीं। किसको पकड़ना है उसे, मोट्या को? या मोट्या के बहाने अपने को? मोट्या कुशल लठैतों की भाँति थिरक रहा, सरिया भाँजता!

अचानक उसने सुना कि सक्सेना सा'ब घर पर नहीं। मेम सा'ब अकेली हैं ऊपर। मेम सा'ब इस उपद्रव की खबर पाकर हतप्रभ हो रहीं। किसी अन्य ने सक्सेना सा'ब को फोन कर इस वारदात की इत्तिला दी। सक्सेना सा'ब ने इधर के लिए निकलने से पहले पुलिस को फोन पर सूचना दे दी है। मेम सा'ब को आश्वस्त करने के लिए कहा है कि उनसे कह दो कि वे घबराएँ नहीं, अविलम्ब घर पहुँच रहे हैं।

मेम सा'ब पुलिस और सक्सेना सा'ब के पार्किंग में पहुँचने से मिनट-भर पहले ही नीचे उतरीं स्लीपिंग गाउन में। बदहवास-सी। सुर्ख आँखें और सूजे हुए पपोटों में।

गाड़ी की दुर्दशा और मोट्या का दुस्साहस देखकर उनकी आँखें फट गईं। ऊपर बैठे हुए सम्भवतः मोट्या की विध्वंसक कारगुज़ारी का उन्हें अनुमान नहीं हो पाया होगा कि इस हद तक वह गाड़ी को नुकसान पहुँचा सकता है।

उन्होंने पूरी कोशिश के साथ पलकें झपका-खोल सामने पसरे अकल्पनीय दृश्य की वास्तविकता को तौलने-परखने का प्रयत्न किया।

पल-भर में ही वे जैसे सारी स्थिति के प्रति सजग हुईं और सबकी चेतावनी के बावजूद, सरिया ताने खड़े हुए मोट्या की ओर निडर भाव से आगे बढ़ीं। लोगों के साथ-साथ वह भी आशंकित हो काँप उठा। मोट्या का रौद्र रूप आज मेम सा'ब का माथा फोड़े बिना शांत नहीं होने का। उसने स्पष्ट लक्ष्य किया मेम सा'ब की उपस्थिति से बेअसर मोट्या ने सरियेवाला हाथ लगभग पूरी ताकत से आक्रामक मुद्रा में तान लिया। उसका पसीने से लथपथ चेहरा थर्राने लगा। बल्कि पूरी देह पत्ते की तरह काँपने लगी। अनहोनी में कसर नहीं!

दम साधे सारे लोग यह देखकर अचम्भित हो उठे कि मेम सा'ब ने उसके निकट पहुँचकर आहिस्ता से उसके तने हुए हाथ से सरिया ले लिया, जैसे कोई सावधानीपूर्वक बच्चे के हाथ से तेज़ धार चाकू ले लेता है।

मोट्या ने कोई प्रतिवाद नहीं किया। झूली हुई बाँहें और झुकी हुई गरदन से वह पाँवों के

नीचे बिछी किरचों को घूरने लगा या अपने ही पाँवों को अनुमान नहीं हुआ।

"इतनी हिम्मत कहाँ से आई रे तुझमें?" मेम सा'ब भर्राए कण्ठ से बुदबुदाईं।

मोट्या आँच पीती बर्फ-सा पिघलता हुआ अचानक घुटनों में मुँह देकर हिचकियाँ भरने लगा, "तुमने खाड़ा कटवा दिया न, मेम सा'ब...अपने सामने चाँटा मारने कू दिया न!...मैं... मैं..."

उसे हथियार सौंपते देख भीड़ हिंसक हो उस पर टूट पड़ी।

बेईमान

दोनों बाँहों में पत्रिकाओं का ढेर कोरियाए हुए उसने दाहिने कन्धे के दबाव से ठण्डी गाड़ी के डिब्बे का दरवाज़ा आहिस्ता-से ठेला और सावधानीपूर्वक तिरछे होकर डिब्बे के भीतर दाखिल हो गया। बैसाख की उमस से पसीजी हुई देह को अचानक महकती शीतलता का झोंका सावनी फुहार-सा आह्लादित कर गया। दरवाज़े से हटकर उसने एक सीट से पीठ टिकाकर देह ढीली छोड़ दी। डिब्बे में गूँजती सितार की मन्द ध्वनि उसके रोम-रोम में थिरकने लगी। एकाएक गाँव के कनकटा काछी की बंसरी कानों में कूक उठी! दादा रे दादा! यह गाड़ी का डिब्बा है या सुरगलोक!

अभी इक्का-दुक्का सीटें ही भरी थीं। सवारियाँ आ रही थीं—बेआवाज़! चौकन्नी! झुक-झुककर आगे बढ़ती हुई उनकी निगाह सीटों की पीठ पर अपनी सीट का नम्बर टटोलती और बैठने से पूर्व सीट के ऊपर तनिक उचककर सामान सहेज, बिना किसी की ओर देखे-बोले अपने स्थान पर दुबक जाती। अन्य गाड़ियों की अपेक्षा इस ठण्डी गाड़ी के यात्री उसे किसी दूसरे लोक के ही मनुष्य प्रतीत होते! शान्त, सौम्य, साफ-सुथरे। बोलते हैं तो सिर्फ ओठ हिलते हैं। आवाज़ नहीं निकलती।

उसे सबसे अधिक अच्छा लगता है—ठण्डी गाड़ी में पत्रिकाएँ बेचना। सुबह से ही उसे ठण्डी गाड़ी की प्रतीक्षा होती है। उचटे चित्त से वह दूसरी गाड़ियों में डिब्बे-दर-डिब्बे डोलता-फिरता नाक चढ़ाये, मन-ही-मन घिनाता-कुढ़ता रहता है कि सरकार सारी ही गाड़ियों को ठण्डी गाड़ी में क्यों नहीं तब्दील कर देती? गाड़ियों के बदलते ही शर्तिया सवारियों के चेहरे बदल जाएँगे। फिर उसे सूखे, भुतहे चेहरों के बीच डोल-डोलकर पत्रिकाएँ बेचने की विवशता से मुक्ति मिल जाएगी। सूखे चेहरे पत्रिकाएँ देखते अधिक हैं, खरीदते कम। उन्हें उसकी परेशानी से क्या लेना-देना कि उनकी पसन्द की पत्रिकाएँ ढेर में से खींचते-सरियाते उसके जोड़-जोड़ अलग होने को हो आते हैं! चिरकुट गाड़ी, चिरकुट सवारी...

लोग तेज़ी से आने शुरू हो गए हैं, लेकिन अभी डिब्बे में फेरी डालना उसे मुनासिब नहीं लग रहा। अपनी सीट पर इत्मीनान से बैठ जाने के बाद ही लोगों को लम्बी यात्रा की ऊबन का आभास होता है; तभी वे समय काटने के लिए उसकी ओर आकर्षित होते हैं। अभी डोलेगा तो एकाध से कन्धा, कोहनी टकराएगी और उनकी अंगार हुई भृकुटियों की

झिड़की झेलनी होगी। हाथ अभी से चूर हो रहे हैं, पीठ-पीछे वाली दोनों सीटें अभी तक खाली हैं। कुछ देर के लिए ही सही, वह पत्रिकाओं के ढेर को उन पर टिका सकता है। उसने मुड़कर धीरे-से पत्रिकाओं का ढेर अगली सीट पर सरका दिया, और अपनी झुनझुना रही कोहनियों को हल्के झटके देकर झुनझुनी उतारने लगा! बस, दो-चार मिनट में ही उसे फेरी लगानी होगी। उसकी बाज़-सी नज़रें आने वाली सवारियों के सामान को टोह रही हैं। इक्का-दुक्का के पास ही अखबार हैं। एकाध सीटों के पीछे भी रखे हुए दिख रहे हैं, मगर बासी अखबार लम्बी यात्रा की ऊबन नहीं ढो पाते। घण्टे-खाँड़ का रास्ता थोड़े ही है, रुकती भी तो छह-सात घण्टे भागने के बाद ही है!

गाँव में उसके मदरसे के साथी मनसुखवा ने एक चमत्कारी किस्सा सुनाया था उसे कि उसके बप्पा दिल्ली से आए हैं और खबर लाए हैं कि एक ऐसी अजूबा ठण्डी गाड़ी चली है, 'राजधानी'...धो क्या नाम है उसका। प्लेटफार्म पर, भैया, जब वह धड़धड़ाती निकलती है, लोग-बाग खम्भा धरि लेते हैं। खम्भा न धरि लें भैया, तौ तड़ से उड़ि कै पटरिन पर जा गिरैं। फंकाई लगी थी तब मनसुखवा की बात!

"येऽऽऽ! 'स्टारडस्ट' है नया? अप्रैल का?" सामने की सीटवाले यात्री ने जैसे उसे चुटकी भरी।

"स्टारऽऽऽ? हाँ आँ, है न बाऊ जी! है, है।"

वह उमंग से भरा सीट पर रखी पत्रिकाओं के ढेर पर झुका ही था कि तभी पीठ-पीछे एक मुलायम दृढ़ स्त्री-स्वर ने 'यही है इकहत्तर, बहत्तर', कहकर उसे आगाह कर दिया कि उन सीटों की सवारियाँ आ चुकी हैं, और उसे तत्काल पत्रिकाओं के ढेर को अपनी गोद में उठा लेना चाहिए।

उसने उन्हीं बाऊजी की कुर्सी के हत्थे से घुटना उचकाकर अड़ाया और कोहनी के बोझ को घुटने पर टिकाकर 'स्टारडस्ट' की प्रति ढेरी में खोजने लगा। अभ्यस्त हाथों को प्रति खोजने में समय नहीं लगा। अंग्रेज़ी 'बट'...'पुट' से ज़्यादा उसे आती नहीं, पत्रिकाओं पर छपी तस्वीरें ही उसके लिए लिपि हैं। राजीव गांधी की तस्वीर वाली है 'नई इण्डिया टुडे'! किमी काटकर और शत्रुघ्न सिन्हा की गलबहियाँ डाले वाली है 'फिल्मी कलियाँ'! बिकनी पहने खड़ी हुई डिम्पल की तस्वीर वाली है 'स्टारडस्ट'! मिल गयी ससुरी! ये रही स्टारडस्ट!

"लीजिये बाऊ जी!" उसने किला फतेह वाली विजयी मुस्कान के साथ पत्रिका उनकी ओर बढ़ाई।

घुटने से गट्ठर को वापस बाईं कोहनी में सरकाते हुए उसने तौलती दृष्टि से बाऊजी को देखा। उनकी आँखें मुखपृष्ठ पर तिरछी तनी खड़ी डिम्पल कपाड़िया के गदराये हुए उरोजों पर अटक गई हैं। बिकेगी। पक्की बिकेगी। बाऊजी को ही क्या, उसे भी अच्छे लग रहे हैं... अम्मा के दूध ऐसे भरे-भरे क्यों नहीं थे! पाटी-बस्ता लेकर मदरसे में बैठने लायक हो गया तब तक उसकी दूध पीने की लत नहीं छूटी थी। भरी दोपहरी में खटोले पर पड़ी ऊँघ रही अम्मा के ऊँचे खिंचे पोलके में से दाएँ-बाएँ लटकी पड़ी उनकी सूखी छातियों को चुकरने से

बाज़ न आता वह। कल्लाहट से सिसियाकर अम्मा बगल में धरा बेना उठाकर हुमक देती उसकी पीठ पर—"नासकटौनू! खा डरिहै का हमका! हटो..."

बाबू भाई से विनती करेगा कि एक 'स्टारडस्ट' उसे भी चाहिए। एक प्रति बचा लें। चाहे तो दाम उसके हिसाब से काट लें...

"पचास का छुट्टा है?"

"न, न, बाऊ जी..." उसका चेहरा दयनीय हो आया।

"ठीक है, कुछ और बेच-बाच लो तो आकर पैसे ले जाओ मुझसे।"

"ठीक, बाऊ जी..."

गट्ठर उचकाये हुए वह पत्रिकाओं के नाम होठों को कनपटियों तक खींचते हुए रिरियाए-से सुर में उच्चारता, सीट पकड़ने को आतुर यात्रियों के लिए आड़े-तिरछे सिमटकर निकलने की जगह बनाता, डिब्बे में तत्परता से फेरी लेने लगा। अगले डिब्बों में भी फेरी लेनी है उसे। दो से अधिक डिब्बे एक साथ निपटाना उसके बूते का नहीं। एक तो उसकी चार-फुटी कृश काया! ऊपर से दस किलो के लगभग पत्रिकाओं का बोझ लादे हुए उसके सुन्न पड़ते बाजू फेरी पूरी होते न होते कन्धों से अलग होने लगते। सुतली से बँधी खाकी मैली निकर चार कदम चलते ही कमर पर टिकने से आँखें दिखाने लगती। कई दिनों से सोच रहा है और बचत की पूरी कोशिश कर रहा है कि बाबू भाई के पास कुछ रुपये जमा हो जाएँ तो सबसे पहले वह अपने लिए नई निकर खरीदेगा। बक्कलवाली निकर! फिर चाहे जितना भारी बोझा हो रंगबिरंगी पत्रिकाओं का, मजाल कि निकर कमर से खिसक ले!

बोहनी अच्छी की डिम्पल कपाड़िया ने! 'मुटापा कैसे कम करें,' विषय पर केन्द्रित 'गृहशोभा' की सात-आठ प्रतियाँ दनादन बिक गयीं दोनों डिब्बों में। अगरबत्ती-सी सुगन्धित मुटकियों ने संकोच छोड़कर खरीदा! पुरुष सवारियाँ अलबत्ता उसे अच्छी नहीं लगतीं। एक तो वे अंग्रेज़ी पत्रिकाएँ ही माँगती हैं उससे, तिस पर समाचार-पत्रिकाएँ विशेष रूप से। अजीब-अजीब-से नाम लेकर। वे नाम अब तक उसे याद नहीं हो पाये। माँग होने पर थोड़ी देर सोचना पड़ता है उसे। 'यह भी देना', 'वह भी देना' सुनते, ढेर में से पत्रिकाएँ रखते-निकालते हाथों पर चींटियाँ रेंगने लगीं। ठण्डी गाड़ी में होने के बावजूद देह पसीने से तर हो उठी।

निकर का खीसा रेज़गारी के वजन से पींगें ले रहा है। बाबू भाई खुश हो जाएँगे आज की बम्पर बिक्री से। टिकट बाबू को दरवाज़ा ठेल भीतर दाखिल होता देख मन अचानक धुकपुका उठा। अभी तो दूसरे डिब्बे में कई एक सवारियों से कीमत वसूलनी है उसे। टिकट बाबू के डिब्बे में दाखिल होने का अर्थ है कि गाड़ी छूटने में अब अधिक देर नहीं। ठण्डी गाड़ी का विचित्र रिवाज है। गाड़ी छूटने के ठीक पाँच मिनट पहले गाड़ी का दरवाज़ा बन्द कर दिया जाता है, बस्स। इसी से भगदड़ मचती है। देरी से पहुँचने वाली सवारियों को भीतर दाखिल होने की उतावली हो रही होती है, विदा करने आये भीतरवालों को बाहर निकलने की।

दूसरे डिब्बे में पाँव देते ही समय की कमी से आशंकित मन से लोगों के चेहरे ही बिसर रहा है! वह एकदम भूल रहा है कि उसने किस-किस को पत्रिका बेची है और उनमें से कितनों से उसे पैसे लेने शेष हैं। याद आया—एक तो एकदम आखिरी वाली सीटों में से किसी ने उससे राजीव गाँधी वाली पत्रिका ली थी। उन पर भी पैसे नहीं थे टूटे। वह तेज़ी से डिब्बे के उस सिरे की ओर लपका। उन चश्मेवाले बाऊजी ने उसे देखते ही पहले वाला ही बीस का नोट निकालकर उसकी ओर बढ़ा दिया। उसने फटाफट निकर की जेब से रुपये निकालकर उन्हें लौटाए। किसी और पर भी पैसे बकाया हैं...याद नहीं आ रहा है! दिमाग में हथौड़े-से बज रहे हैं! उसने घबराकर 'पैसे, पैसे...बाऊजी, पैसे?' कहकर मगन सवारियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना चाहा। जिसे देने होंगे वह स्वयं ही उसकी आवाज़ सुनकर चेतेगा। वह चियाए बैठे हैं। कोई नहीं बोल रहा। कोई नहीं चेत रहा, जैसे किसी को उसे कुछ देना ही न हो। हो सकता है, न भी देना हो... उसे यूँ ही लग रहा हो। किसी सवारी पर पत्रिका की कीमत बकाया है! बाएँ कन्धे से दरवाज़ा ठेलकर बाहर निकलने के पूर्व अचानक दिमाग में बालों पर चश्मा चढ़ाये हुए एक बीबी जी का चेहरा कौंधा! उन मेम सा'ब ने चार-पाँच पत्रिकाएँ इकट्ठी देखने के लिए ली थीं। उनमें से दो या तीन उन्होंने रख ली थीं। शायद दो 'गृहशोभा' और 'मनोरमा'। वह तेज़ी से सीटों की ओर बढ़ा।

हाँ, यही तो है! तब चश्मा चढ़ा रखा था बालों पर, धूप का। डिब्बे में धूप थोड़े ही है, सो उतारकर रख लिया होगा। गोद में कोई पत्रिका औंधी पड़ी हुई है उनके। 'मनोरमा' ही लगती है।

"मेम सा'ब पैसे?" संकोच छोड़कर उसने सीधा उन्हें सम्बोधित किया।

"पैसे! कैसे पैसे?"

"दो ठो पत्रिका....दुल्हिन वाली ये 'मनोरमा' अऊर..." उसने उनकी गोद में औंधी पड़ी हुई पत्रिका की ओर दृष्टि उचकाई।

मेम सा'ब की अंगारे हुई भृकुटियाँ ऐनक की जगह जा बैठीं, "यू शट अप... यह मेरी 'मनोरमा' है, घर से लायी हूँ मैं रास्ते में पढ़ने के लिए..."

उसका चेहरा डाँट खाकर पुँछी स्लेट हो आया। साहस बटोरकर उसने उन्हें दुबारा स्मरण कराने की कोशिश की, "इकट्ठी नहीं लिये आप तीन-चार पत्रिकाएँ..." इस बात से उन्हें ज़रूर याद आ जायेगा, उसे यकीन था।

"किसी और को दी होंगी तूने, ईडियट...ये 'राजधानी' है कि छकड़ा? कैसे-कैसे उचक्कों को घुसाकर बैठा लेते हैं गाड़ी में, जिन्हें सवारियों से बात करने तक की तमीज़ नहीं..." मेम सा'ब ने अपने बगल में बैठे प्रौढ़ सज्जन की ओर समर्थन की आस में देखा। सज्जन निरपेक्ष मुद्रा धारण किये केवल उन्हें तककर रह गये, जैसे कह रहे हों कि हम क्या बोलें! हम तो आए ही आपके बाद हैं। अचानक गाड़ी में हल्का-सा कम्पन हुआ। वह घबरा उठा। अब बहस से कोई लाभ नहीं। ठण्डी गाड़ी है, छूटी तो तीर की भाँति सीधे कोटा पहुँचकर ही दम लेगी।

बाहर का दरवाज़ा खोलकर वह प्लेटफॉर्म पर पाँव देने को सतर्क हुआ ही था कि अचानक टिकट बाबू ने पत्रिकाओं के ढेर में से एक पत्रिका बड़ी कुशलता से उचक उसे चेतावनी पिलायी "बाप की गाड़ी है बे!"

प्लेटफॉर्म पर पाँव देते ही उसे अपनी देह पीछे को फिंकती हुई महसूस हुई।

बिना ग्राहक के बुक स्टॉल पर खड़े हुए बाबू भाई उसे लस्त-पस्त देखकर तनिक चकित हुए। ठण्डी गाड़ी में चढ़ते हुए भी छटंकी का चेहरा उत्फुल्ल रहता है, उतरते हुए भी ठीक न्यौता खाकर लौटे तृप्त मानुस की भाँति। उनकी आँखें भंटे हो आईं "छटंकिया! पलट क्यूँ आया तू बे? तीन नम्बर पर बम्बईवाली डीलक्स लग रही है, भूल गया?"

उसने सुनी-अनसुनी मुद्रा अपनाते हुए चैला हो रही कोहनियाँ यथाशक्ति उचकाकर, पत्रिकाओं के गट्ठर को भीतर आने-जाने के लिए इस्तेमाल होनेवाले दरवाज़े से ऊपर को खुलते-बन्द होते पट्टे पर खिसका दिया और बाएँ हाथ से दाहिनी बाँह तेज़ी से रगड़ने लगा। चैले में प्राण ही नहीं फुँक रहे! कितनी बार विनती की है बाबू भाई से एकमुश्त पत्रिकाएँ न लादा करें उस पर। लेकिन बाबू भाई चिकने घड़े-से झिड़क देते हैं उसे—"भरा-पूरा माल न दिखे तो ग्राहक ललचेगा? अबे, खाली कटोरा देख दानी के हाथ भी सुस्त पड़ जाते हैं!"

उसने कनखियों से देखा। विदा करने आई हुई भीड़ जेबकटी हताशा में डूबी मन्थर गति से पलट रही है।

"एक चाय पी आऊँ?" उसका चेहरा खाली कटोरा हो आया।

"चौप्पऽऽ! दिमाग खराब हुआ है तेरा...धन्धे के टेम सनक रहा है? ला हिसाब दे। कितनी कॉपी ले गया था कुल...और पहुँच तीन नम्बर पर!"

"साठ और दुइऽऽऽ बासठ।"

"बासठ कि पैंसठ?"

वह दुविधा में पड़ गया। बाँह रगड़नी उसने छोड़ दी"हाँअऽऽऽ तीन आप चलने के समय दिये थे, वो तोप के मुँहवाली..." (ऑन लुकर)।

"सटाक् से लील जाता है हैंय? बोल कितनी गईं, कौन-कौन-सी गईं?" फिर उतावले बाबू भाई मुड़कर स्वयं गट्ठर गिनने में जुट गए। आधे पर भी नहीं पहुँचे होंगे कि तभी फुर्ती से आयी एक स्कूली छात्रा-सी लगती किशोरी ने कुमार कश्यप के नए उपन्यास 'दुल्हन के सपने' की माँग रख दी। बाबू भाई के माथे की सलवटें अन्तर्धान हो गईं—"अभी लीजिये, बेबी! धड़ाधड़ बिक रहा है 'दुल्हन के सपने'...बस्स, ये आखिरी कॉपी बची है आपके लिए।" उन्होंने खीसें बगारते हुए साफ झूठ बोला, और 'दुल्हन के सपने' नीचे रखे ढेर में से तत्परता से निकालकर किशोरी की ओर बढ़ा दिया। लड़की नियमित खरीददार लगी। मुट्ठी में दबाए बारह रुपये करीने से लगी पत्रिकाओं में से एक के मुखपृष्ठ पर छोड़ वह तेज़ी से उपन्यास लेकर मुड़ ली। प्लेटफॉर्म पर गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे किसी परिवार से आँख

बचाकर आई हुई लगती है—बाबू भाई ने उसका इतिहास अनुमान लगाया। बुक स्टॉल पर सुबह आठ से रात के दस-ग्यारह तक खड़े-खड़े बाबू भाई की गिद्धदृष्टि यात्रियों की जेब से लेकर उनकी औकात तौल लेने में माहिर हो चुकी है। लड़की के जाते ही पत्रिकाओं के गट्ठर की ओर बाबूभाई मुड़े तो छटंकी को उन्होंने पत्रिकाएँ गिनते हुए पाया। पंजों पर उचका हुआ वह पत्रिकाओं के शीर्ष पर पहुँचने की यथासम्भव कोशिश कर रहा था। किन्तु उस ऊँचाई तक उसे पहुँचाने में उसके पंजे असमर्थ सिद्ध हो रहे थे। गिनती भी गड़बड़ा रही थी। बाबू भाई ने उसे परे झटका और उँगलियाँ थूक से गीली कर नोटों की गड्डी गिनने की तर्ज़ पर पत्रिकाएँ सर्र-सर्र गिनने लगे। गिनना खत्म होते ही हुंकारी-सी भरी उन्होंने"अड़तालीस हैं बची..." मतलब, कुल सत्रह बिकीं, बस, सत्रह! तू तो बड़ा लपककर ठण्डी गाड़ी में घुसता है बातें बघारता हुआ। पढ़ी-लिखी सवारियाँ होती हैं इस गाड़ी में और पढ़े-लिखे बाबू ही टेंटें ढीली करते हैं...घण्टे-भर सत्यानाश करके कुल सत्रह बेचीं तूने...?"

"ला पैसे निकाल, भुच्च जैसा खड़ा क्या तक रहा है...तीन नम्बर वाली गाड़ी की फिकर है तुझे?" बाबू भाई उसके अकबकायेपन पर क्रुद्ध हो तर्राए।

वह निकर के खीसे से रुपये और रेज़गारी निकालकर अखबारों पर रखने लगा।

बाबू भाई ने हिसाब-किताब करने के लिए पेंसिल और पैड निकाल लिया।

"इण्डिया टुडे कितनी?"

सवाल सुनकर उसकी धड़कनें तेज़ हो गईं। कनपटियाँ गरमाने लगीं। हिम्मत नहीं हो रही बताने की कि उतरते-उतरते टिकट बाबू ने कैसी फुर्ती से गट्ठर के ऊपर रखी राजीव गांधी वाली पत्रिका धाँप ली थी! बोलना तो पड़ेगा ही। हिसाब होना है।

"तीन...तीन में से एक..." उसने बोलने का साहस जुटाया लेकिन बात मुँह में घुमड़कर रह गयी।

"एक? क्या एक?"

"उतरते समय टिकट बाबू ने एक उठा ली!"

"और तूने उठा लेने दी?"

वह आँखें नीची किये अँगूठे से प्लेटफार्म का मैला फर्श कुरेदने लगा। पता नहीं क्या होगा अब! तीन-चार दफे वह पिट चुका है इसी खातिर। मगर वह क्या करे?

"चिरौरी नहीं की, मैं मालिक नहीं, नौकर हूँ, कहाँ से डाँड़ भरूँगा...? अबे वाजिदअली शाह की औलाद! डिब्बे-डिब्बे टिकट बाबू मिलेंगे तुझे और तू उन सबको मुफ्त पत्रिका बाँटता फिरेगा? खैरात बाँटने निकलता है कि..." हाथ का पंजा तान क्रोधित बाबू भाई एक भद्दी-सी गाली पिच्च-से उसके चेहरे पर थूक, खून पीकर रह गए।

"इस बार तेरे हिसाब में कटेंगे, आगे बोल!"

उसका रुआँसा स्वर कुएँ में से आता प्रतीत हुआ, "डिम्पल कपाड़िया छह, नहीं सात... नहीं छह..."

"गृहशोभा?"

"सात।"

"चित्रलेखा?"

उसने इनकार में मुण्डी हिला दी।

"मनोरमा?"

कुछ नहीं सूझा कि क्या जवाब दे। बालों पर धूप का चश्मा चढ़ाए हुए मेम सा'ब याद हो आईं।

"फिल्मी कलियाँ?"

"एक...नहीं, वापस हो गई थी।"

"तो तीन 'इण्डिया टुडे' और एक 'मनोरमा' मिलाकर कुल गईं सत्रह और तू हिसाब दे रहा है तेरह का?" बाबू भाई ने पत्रिकाएँ, सतर्कतापूर्वक दुबारा गिनीं। हिसाब पकड़ में आ गया उनके। कितनी कौन-सी दी थी इसे ध्यान न रखें तो समझ लो सब बँटाधार! यह पिद्दी-सा छटंकी भी उन्हें चूना लगाने से न चूके। हिसाब लगा लिया उन्होंने। कुल हुए एक सौ सत्तावन!

"कितने हैं तेरे पास?" कारोबार चलाना कोई हँसी-ठट्ठा है?

उसका स्वर काँपा, "एक सौ...अऊर चालीस अऊर तीन..."

"क्या?" बाबू भाई की त्यौरियाँ फिर चढ़ बैठीं—"ठीक से देख अपनी दोनों जेबें!"

उसने निकर के खीसों में दुबारा हाथ डालकर उन्हें खंगाला।

"गिर गये?" बाबू भाई ऊबे हुए-से गरजे।

उसकी आँखें पनियाने लगीं। बालों पर ऐनक चढ़ाए वही मेम सा'ब और टिकट बाबू फिर स्मरण हो आए।

"'इण्डिया टुडे' और 'मनोरमा' का दाम हुआ चौदह..." बाबू भाई हिसाब जोड़ने लगे। फिर उसकी ओर मुड़े। आज उसका पत्ता साफ! अबकी नहीं माफ करेंगे उसे बाबू भाई।

"पिछले तेरे बत्तीस रुपये जमा हैं हिसाब में...नुकसान चौदह काट के बचे अट्ठारह... आज की बिक्री पन्द्रह...पन्द्रह के तेरे कमीशन के हुए तीन रुपये, तो हुए इक्कीस! ले पकड़ अपने इक्कीस, और दफा हो सामने से। सदाव्रत खोल रखा है मैंने! हैंअ? भिखमंगों पर दया करके ऐसी ही लात लगेगी...एक के पीछे रुपिया-डेढ़ रुपिया मुश्किल से कमीशन मिलता है, बीस पैसे तुझे दूँ कॉपी पीछे... क्या कमाऊँगा?"

उसके आँसू टप-टप बहने लगे।

"तू भोला नहीं है, छँटा हुआ है, नम्बरी! चाट-चूट आया होगा रुपिये... एकाध बार तेरे टिसुओं पर पसीज क्या गया कि तू चराने लगा जब-तब?"

वह हिचकी भर गिड़गिड़ाया, "एकाध वसूली रह गयी...गाड़ी छूटने को थी, छुट्टे नहीं

होते पास, सो छोड़ने पड़ते हैं पैसे उन पर...कुछ छुट्टे संग हों न तो फिर ऐसी भूल आगे नहीं होगी..."

"ऐसी भूल आगे नहीं होगी...क्या विश्वास तेरा कि तू पत्रिकाओं और पैसे समेत चम्पत न हो जाए किसी दिन? हैंय? मेरे ही मुँह पर हाथ फेर रहा है छटाँक-भर का तू? भूल गया, तीन दिन का उपासा पड़ा सूख रहा था यहीं प्लेटफॉर्म पर? पेट में अन्न पड़ते ही नीयत गिरगिट हो गई ना...भाग, नहीं तो गिनकर पचास दूँगा..."

पट्टे के नीचे से घुसकर उसने पाँव पकड़ लिये बाबू भाई के"एक मौका अऊर दो... एक!"

बाबू भाई की टाँगें जैसे अंगार छू गईं। निर्ममता से उसे परे धकेल वे आपा छोड़कर इतनी ज़ोर से चीखे कि सामने से गुज़र रहे फलों की रेहड़ीवाले गुप्ता रुककर उनकी ओर कौतूहल से देखने लगे।

उसने फुर्ती से उठकर पुनः बाबू भाई के पाँव धर लिए। इतने बड़े भरे-पूरे प्लेटफॉर्म पर बाबू भाई ने ही पसीजकर उसे पहला चाय का प्याला पिलाया था। अपने बुक स्टॉल के नीचे सो रहने की अनुमति दी थी। पुलिसवालों को समझा दिया था कि वे उसे दिक्क न करें। उनका परिचित है। उन्हीं के पास घर से भागकर आया है।

"भैया, मोर भैया! एक मौका अऊर दे दो! अबकी जो गलती हुई...न छिमा करना!" वह उनके पाँव छोड़ने को राज़ी नहीं हुआ। जाएगा भी कहाँ! न गाँव में ठौर-ठिकाना, न इस शहर में। अम्मा की आँखे मुँदते ही मामी आमीशंकरपुर लिवा ले गई थीं, मगर पूरा दिन ढोर-ढंगर की सानी-पानी करने के बाद भी भरपेट पनेथी नहीं जुहाती थी उसके लिए...।

बाबू भाई के भन्नाये दिमाग में नफे-नुकसान की काँटेबाजी चलने लगी। नुकसान में फिर भी कौन हैं वे? उन्हें क्या! उनको उनका कमीशन मिलता रहे, पत्रिका बिककर मिले या लौंडे के हिसाब से कटकर मिले, बात एक ही है। फिर बीस-पच्चीस रुपये रोज़ से नीचे कोई दिहाड़ी करने को मिलता भी तो नहीं! 20 पैसे कमीशन पर छोकरे राज़ी कहाँ होते हैं काम के लिए?

"उट्ठ!" उन्होंने छटंकी को अपना पाँव छोड़ने का संकेत किया और बगल में धरी पत्रिकाओं के ढेर में, सात 'गृहशोभा', चार 'इण्डिया टुडे', छह 'स्टारडस्ट' और एक 'मनोरमा' मिलाते हुए गट्ठर उसकी ओर दुबारा सरका दिया—"अबे, घोंघे-सा क्या तक रहा है! देख नहीं रहा? पाँच बजने को हैं? लपक तीन नम्बर पर, बम्बई जाने वाली डीलक्स छूट न जाए कहीं...दौड़ सरपट!"

उसने कृतज्ञ दृष्टि से बाबू भाई की ओर देखा और फिर फुर्ती से पत्रिकाओं का गट्ठर गोद में कौरिया, प्लेटफार्म से कूदकर, लाइनें क्रॉस कर तीन नम्बर प्लेटफार्म पर चढ़ने लगा।

कितना ठसम्-ठस्स है प्लेटफार्म पर—तकिया के मेले-सी! पल-भर की भी असावधानी का मतलब होगा, पत्रिकाएँ भरभराकर सवारियों के तलुवों के नीचे! पत्रिकाओं के गट्ठर को उसने नवजात शिशु की भाँति सीने से चिपटा लिया। अब ठीक है। उसे चाहे जो

हो जाए, पत्रिकाओं को कुछ नहीं होना चाहिए। नहीं तो उसकी नई बक्कल वाली निकर फिर हिसाब में कट जाएगी! यह तो पक्का है, किसी सवारी के पास छुट्टा नहीं हुआ तो वह उसे पत्रिका नहीं बेचेगा। देखने को भी देगा तो डटकर सामने खड़ा रहेगा। पढ़े-लिखे लोग ऐसे होते हैं? अम्मा उसे ऐसा ही पढ़ा-लिखा बनाने का सपना देख रही थीं!

गाड़ी छूटने को है। बिक्री होने से रही। डिब्बे में धँसना सम्भव नहीं। पाखाने तक सामान का अम्बार लगाये बैठी हुई हैं सवारियाँ। बाहर से खिड़की-खिड़की घूमना ही उचित होगा।

"ए लड़के! 'फिल्मी कलियाँ' है?" किसी सवारी ने उसे आवाज़ लगाई। उस खिड़की पर से वो बाबू जी झाँक रहे हैं उसे पुकारते।

वह फुर्ती से लपका।

"है न, बाऊ जी!" किलककर उसने पत्रिकाओं का गट्ठर गाड़ी की दीवार से सटाया और 'फिल्मी कलियाँ' तत्परता से ढेर में से खींचकर खिड़की के सींखचों के अन्दर बढ़ा दी।

"कितने?" सरसरी तौर पर पत्रिका का जायज़ा लेते हुए बाबू जी ने पूछा।

"बस्स, सात रुपये, बाऊ जी!"

"छुट्टे हैं तुझ पे?"

उसका चेहरा असमंजस से घिर आया, "छुट्टे दे दीजिये न, बाऊजी!"

"छुट्टे हैं नहीं, पचास का नोट है।"

"हों तो..."

"होते तो देता नहीं?"

सहसा उसके दिमाग में कुछ कौंधा। उसने लपककर बाऊ जी के हाथ से पचास का नोट ले लिया—"अभी दुकान से छुट्टा लेकर आया, बाऊ जी...बस्स तीन डिब्बे छोड़कर है बुक स्टॉल, यूँ गया, यूँ आया..."

गट्ठर लिए उसके मुड़ते ही गाड़ी ने अचानक रेंगना शुरू कर दिया।

बाऊजी सींखचों से चेहरा सटाये घबराए स्वर में चिल्लाये, "जल्दी ला, भैया!"

उसका दिल उसकी उभरी पसलियों को तोड़कर उछलकर बाहर आ जाने को है। आगे बढ़ते डिब्बों के संग हाथ हिलाती बढ़ रही भावुक भीड़ को चीरते हुए वह पीछे को बढ़ने लगा। रिजर्वेशन के चार्ट बोर्ड के निकट पहुँचकर वह चार्ट बोर्ड के पीछे दुबक गया। वहाँ खड़े हुए वह स्पष्ट देख रहा है कि 'फिल्मी कलियाँ' वाले यात्री बाऊजी घबराये हुए-से दरवाज़े पर आ गए हैं और लटके हुए-से पीछे छूट रही भीड़ में उसे उचक-उचककर खोज रहे हैं! गाड़ी प्लेटफॉर्म का आखिरी सिरा छोड़ रही है।

उसके मन में हिसाब-किताब चल रहा है। पचास में से बाबूभाई को सात देकर बचे... बचे तैंतालीस! तैंतालीस में से ठण्डी गाड़ी वाले नुकसान हुए चौदह कट गए तो बचे उनतीस...

वह तेज़ी से पलटकर प्लेटफॉर्म की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। पता नहीं क्यों, पत्रिकाओं का गट्ठर एकाएक बक्कलवाली निकर में बदल गया।

जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं

परात में जगह-जगह सूख गए आटे को करछुल से खुरच-खुरचकर छुड़ाती हुई सुक्खन भौजी खीजती बड़बड़ाए जा रही है कि भला इन आजकल की दुलहिनों को हो क्या गया है! चूल्हा-चौका निबटाकर बासन समेटती हैं तो कोई पूछे इनसे कि बरतनों को भिगोकर क्यों नहीं रखतीं? रगड़ते-छुड़ाते उनकी गदेलियाँ छरछराने लगती हैं। तिस पर कभी भूले-भटके परात, बटलोई में अन्न का दाना चिपका रह गया तो समझ लो कटिया-जुद्ध! बरैया-सी बर्राने लगेंगी, "अई सुक्खन भौजी, बासन खंगाल के धरि गयी हो का? तनिक जाँगर चलावा करो? सेंत-मेत में तो मँजतिव नहीं। बीस ठो नकद, कलेवा ऊपर से अऊ तीज-त्यौहार का नेग, कौंछु सो अलग! कहौ तो दोना-पत्तरिन पर खवावे लागी? मझली दीनापुर वाली के व्यंग्य बाण कलेजे को छलनी कर देते हैं। जुबान न हुई खच्च-खच्च कटिया काटती हुई गँड़ासी हो गई। देहरी की परजा हैं सो मुँह सिये गर्दन झुकाये हाथ चलाती रहती हैं, नहीं तो एक वह भी ज़माना था कि बहुरियों की हँसी-ठिठोली में उखड़ी साँसें सधती नहीं थीं कि चटपट टहल पूरी! कहते हैं, सिपाहियों के घर की धिरिया है दीनापुरवाली! सो इसी से तिलुवा दूसरों की मीन-मेख निकालने में ही जुटा रहता है। वही निहाद हैं! "पीतर की नथनी पे इत्ता गुमान, सोने की होती तो चलती उतान..."

"हुँह!..."

मँजे बासन झाबे में समेट सुक्खन भौजी नर्दवा पर से पलट ही रही थी कि देहरी से ठाकुर सुमेर सिंह की खँखार कानों में पड़ते ही जहाँ-की-तहाँ पीठ फेरकर ठिठक गई।

काम-काज को डोलती दुलहिनें झपटकर खमसार की ओट हो लीं। उनकी खंखार पर्दाधारियों के लिए संकेत होती है कि वे सावधान हो जाएँ, मालिक घर में दाखिल हो रहे हैं। बलिष्ठ सुदीर्घ कायावाले ठाकुर सुमेर सिंह बैसवाड़ा के प्रतिष्ठित ठाकुरों में से हैं। पक्की चार गोंईवाले। लेकिन अब न वह ताल्लुकेदारी रही, न वह शानो-शौकत! फिर भी 'हाथी मरा तो सवा लाख' वाला दबदबा जवार में कायम है। पिछले वर्ष तक वे लगातार गाँव के प्रधान चुने जाते रहे हैं। इस साल जनता पार्टी के पंडित भुवनेश्वर वाजपेयी से मात खा गए। अब बीस बिसुआई ऐंठ और बैसवाड़ी ठकुराई में गले-गले तक ठनी हुई है, मजाल कि ठाकुर सुमेर सिंह की मूँछों की तुर्राहट कहीं से ढीली नज़र आ जाए! गाँव की प्रधानी हाथ से सरकी तो सरकी, युवा कांग्रेस के पिछड़े वर्ग के प्रान्तीय सचिव तो वे हैं ही। पीठ पीछे हाथ बाँधे हुए वे

दाहिनी खमसार के विशाल दालान को पार करते हुए, कठौते में रखी मिर्चों में सींक से मसाला भरती हुई दिद्दा के निकट जा खड़े हुए "अम्मा! सुक्खन भौजी से कहना कि टहल निपटाकर जाते हुए वह हमसे बैठक में मिलकर जाए, ज़रूरी बातें करनी हैं उससे..."

"ललौना की बाबत बड़कऊ! सहर से डाकदर आ रहे हैं का?" दिद्दा ने प्रयोजन का अनुमान लगाना चाहा।

प्रत्युत्तर में ठाकुर सुमेर सिंह ने 'हाँ, अम्मा' कहकर अनुमोदन में सिर हिलाया और लौटने को मुड़ने लगे कि अनायास दिद्दा को कुछ स्मरण हो आया, "कालि पूरनमासी है बड़कऊ, चंदिकन स्वामी जी के दर्शन के बरे जाये चहित हन हम। गाड़ी नहवाय देहो तड़के?"

"चली जाइएगा!"

आगे न उन्होंने दिद्दा को किसी प्रश्न का अवसर दिया, न स्वयं कोई जिज्ञासा व्यक्त की कि सुबह उनके संग और कौन-कौन जाएगा। जिस तेज़ी से वे घर के भीतर दाखिल हुए थे उसी तेज़ी से खड़ाऊँ की 'ठक्-ठक्' पीछे छोड़ते हुए, देहरी लाँघ बाहर हो लिए।

नर्दवा के इर्द-गिर्द जूठन और राख की गन्दगी बुहारती हुई सुक्खन भौजी के अन्तस में क्षण-भर पहले दीनापुरवाली की प्रताड़ना का मलाल एकाएक शीतल धार पड़ी लपट-सा शान्त हो गया। दिद्दा और ठाकुर सुमेर सिंह के मध्य हुई बातचीत उनके चौकन्ने कानों में पड़ चुकी थी। ठाकुर सुमेर सिंह का हृदय ठीक बड़े मालिक पर गया है! कठोर धरती में छिपे जल-सा। बड़े मालिक जब तक जीये, जन-मजूरों को अपनी परजा समान पाला। उनका उसूल था कि उनकी जी-हजूरी बजानेवाला भूखा-नंगा न सोए। कैसे भूल सकती है वह कि ललौना के पैदा होने की खुशी में चाँदी की तोड़ी नेग दी थी उसे! शेष तीनों भाइयों में मँझले तर-ऊपर के सुभग सिंह और सुखदेव सिंह प्रदेश की राजधानी में ही अधिक समय बिताते हैं। कहते हैं कि वहाँ वे कारतूसों का कारखाना चला रहे हैं। महानगरीय संस्कृति के अनुपयुक्त करार देकर सुभग सिंह ने शेरागढ़वाली को छोड़कर दूसरा ब्याह रचा लिया है। शेरागढ़वाली जब से गौने में विदा होकर आई है, कंगन खुलने वाली रात भी उसे पति-सुख नसीब नहीं हुआ। शहरवाली के तीन बच्चे हैं। सुखदेव सिंह बराबर घर आते-जाते हैं। सबसे छोटे पेटपोंछन नरेन्द्र सिंह सेना में हैं। न जाने कहाँ-कहाँ से उनके ब्याह के प्रस्ताव आ रहे हैं। लेकिन दिद्दा की ज़िद के बावजूद नरेना टाले जा रहा है। ठाकुर सुमेर सिंह दिद्दा को अक्सर समझाते रहते हैं—आजकल के लड़कों पर ज़बरदस्ती उचित नहीं, सुभग के मामले से चेत जाओ। दिद्दा बिथा से विचलित हो उठती हैं "नरेना के सिर पर मौर देखै की आस लिये लम्बरदार चले गये। लागत है, हमरेउ भाग्य में छोटकी दुलहिन की मुँहदिखाई नहीं बदी..." अपनी बात की मर्यादा न रखे जाने का दुःख ठाकुर सुमेर सिंह को भी सालता होगा। मगर पूजते वट-वृक्ष सदृश जैसे परिन्दों को रैन-बसेरा दिए, अपने तन-मन पर आँधी-पानी-घाम झेलते अडोल-से खड़े हुए हैं...

टहल निपटाकर, आँचल से हाथ पोंछती हुई नित्य की भाँति सुक्खन भौजी दिद्दा के

खटोले के निकट भूमि पर आ बैठी और हलकी मुट्ठी से उनकी खाल छोड़ रही टाँगें चाँपने लगी।

"कइसे हय तोर ललौना, सुक्खन की दुलहिन?" मिर्चों से भरा कठौता एक ओर सरका दिद्दा ने हाथ रोक दिए।

सहानुभूति पा सुक्खन भौजी की पीड़ा पित्ती-सी उछल आई—"का कहीं, चलै-फिरै ठीक से पावत नहीं...बबूल की बकुलिन की बैसाखी बनाइस है...वही के टेका लइ-लइ के मदरसे जाइ क बरे सौखियात हय...काल कहिसि..." सहसा नम हो आई आँखों को आँचल से पोंछते हुए अपने को संयमित करने की कोशिश की सुक्खन भौजी ने, "काँख पिराति है, अम्मा! देखा तो पावा मोरी मालकिन! काँख छिलि के घाव हुई गयी हय..."

उसकी व्यथा से विचलित हो आई दिद्दा ने कन्धे पर हाथ रख ढाँढ़स बँधाया "च्, च्, च्, सोवत बेरिया तनिक हल्दी तता के धर दीन्हों काखन पे, धीरज धरो! लँगड़ाय सही, बेटवा तो हय, मरत बिरिया मुँह में गंगाजल डारे क बरे...?" फिर पल-भर मौन साध अवरुद्ध कण्ठ से बोलीं, "शेरागढ़वाली कइसे धीरज धरै, सोचव सुक्खन की दुलहिन!"

सुक्खन भौजी दहलीज़ पार कर दाईं ओर बनी बड़ी-सी चौपालनुमा बैठक के सामने तनिक आड़ लेकर जा खड़ी हुई। भीतर से आती बतकही और ठहाकों से अनुमान हुआ कि बैठक में काफी लोग जमे हुए हैं। व्यग्र हो आई कि ठाकुर सुमेर सिंह को कैसे खबर हो कि वह मोहारे पर खड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही है। घर के किसी बच्चे को न गुहार ले ताकि जल्दी भेंट हो जाये! ऐसे तो खड़े-खड़े दिन चढ़ जाएगा और मुलाकात नहीं हो पाएगी। सोचकर मुड़ने को ही हुई कि तभी किसी ने भीतर से उसे देख लिया, क्योंकि दुक्खी ने फौरन बाहर आकर उसे रुकने का संकेत किया, "मालिक आ रहे, सुक्खन भौजी!"

निकट आती खड़ाऊँ की आहट से सतर्क हो सुक्खन भौजी ने नाक तक आँचल खींच लिया। धड़धड़ाती भागी जा रही लढ़िहा के चक्कों-सी धड़कनें तेज़ हो उठीं। हालाँकि दिद्दा से हुई उनकी संक्षिप्त बातचीत के समय वह भेंट का सन्दर्भ अपने कानों सुन चुकी थी, फिर भी ठाकुर सुमेर सिंह से एकान्त में बात करने का अवसर सुक्खन भौजी के लिए पहला ही था। साहस पसीज रहा है...

"गाँव में भूतपूर्व स्वास्थ्य मन्त्री जगदम्बा बाबू आने वाले हैं। जनता के कष्टों की जानकारी लेने...उनको सुनने..." बिना किसी पूर्व भूमिका के ठाकुर सुमेर सिंह ने अपनी बात शुरू कर दी—"उन्होंने 'विकलांग उद्धार समिति' गठित की है। 'विकलांग उद्धार समिति' विकलांग को स्वावलम्बी बनाने का प्रयास कर रही है। लूले-लँगड़े लोग भी समाज में बराबरी का जीवन जी सकें, यह उनका लक्ष्य है। मैंने आस-पास के गाँवों से अपाहिजों का विवरण भिजवाया है। जिला अस्पताल के विकलांग-विशेषज्ञ उन्हें देख रहे हैं। डॉक्टरी परीक्षण के आधार पर जिसकी जैसी आवश्यकता होगी, सहायता की जाएगी।"

अपनी बात अधिक स्पष्ट करने की मंशा से उन्होंने वाक्यों को तनिक सरल बनाकर समझाया, "अगर किसी के पाँव लग सकते हैं, नकली पाँव लगवाए जायेंगे...किसी के पाँव

नहीं लग सकते, उसे पहियोंवाली गाड़ी प्रदान की जाएगी, जिसे वह अपने हाथों से चला सकेगा। अपने गाँव से मैंने तुम्हारे बेटे का नाम भेजा है। कल डॉक्टर आ रहे हैं। सुबह दस बजे के आस-पास ललौना को बैठक में ले आना। कुछ दिनों बाद दंगल वाले मैदान में एक समारोह होगा, उसी समारोह में जगदम्बा बाबू अपाहिजों को ये उपहार वितरित करेंगे...”

अविश्वास से भरा सुक्खन भौजी का भावाकुल हृदय कृतज्ञता से अवनत हो ठाकुर सुमेर सिंह के चरणों में झुक गया। भूमि पर से उसका माथा उठा भी नहीं कि वे आगे कुछ कहे बिना मुड़कर बैठक की ओर बढ़ दिए। विह्वल सुक्खन भौजी को यही प्रतीत हुआ कि क्षण-भर पूर्व उससे कुछ डग दूर ठाकुर सुमेर सिंह नहीं, बल्कि कोई चमत्कारी सिद्ध महात्मा खड़े हुए थे।

उठी तो महसूस हुआ कि उसकी टहल से थकी-टूटी देह एकाएक फुनगी पर हिलोर लेता फूल हो आई है। पन्द्रह बरस होने को आए, ललौना को सहज चलता-डोलता देख पाने की लालसा करेजे की हूक-सी हुहुआती न खुशी से मुँह में कौर देने देती है, न खुलकर हँसने-बोलने!

कौन-से जतन नहीं किए। वैद्य, हकीम, झड़वइए-फुँकवइए, टोने-टोटके—सब अजमा लिए, पर ललौना की निर्जीव टाँगों पर किसी जड़ी-बूटी, मानता-मनौती का परताप नहीं चढ़ा।

टोले में कदम रखते ही पाटी-बस्ता लटकाए हुए बच्चों की टोली देख उसकी निष्प्रभ आँखों में हसरत-भरी चमक कौंध गई। ललौना भी हठ करके मदरसे गया है बकरिहाइन काकी के नाती भग्गू के संग। बकुलियों के सहारे कढ़िलते-कढ़िलते। भग्गू ने उसके आशंकित मन को आश्वस्त किया था—“डरो न ननिया, साथ हन ना हम।” ललौना की पाटी, बुदिक्का वही उठाकर ले गया है। पहले वह ले जाके छोड़ आया करती थी, पर रोज़-रोज़ कब तक दौड़ लगाती? पल-भर की अबेर हुई नहीं कि दुलहिनों की जुबान तेल-पिए कोड़े-सी अँगनई में दाखिल होते ही सड़सड़ाने लगती।

कैसे अच्छे लग रहे हैं बच्चे! उनकी काँख में बड़ी-सी पाटी दबी है। दूसरे हाथ में छुहिया भीगा बुदिक्का! धींगामुश्ती करते, चहकते-बतियाते ऐसे बढ़े आ रहे हैं जैसे हिरन-शावकों का चौकड़ी भरता झुण्ड। सहसा उसे लगता है कि गलियारे के दाहिनी ओर चली आ रही टोली में जो सबसे ऊँचा, तन्दुरुस्त, भरी-भरी जाँघोंवाला बस्ता लटकाए लड़का झूमता चला आ रहा है, उसका ललौना ही तो है! गलियारे की धुनकी कपास जैसी भुसभुसी धूल में उसके नंगे पाँव धूसरित हो रहे हैं...बस, जाँघों पर झूलती पटरे की जाँघिया उसके सुन्दर तन पर पैबन्द-सी अखर रही है। अब जाँघिया पहनकर मदरसे नहीं जाने देगी। उसकी बराबरी के लड़के पायजामा पहनने लगे हैं। पाई-पाई बचा के कुछ रुपये कुजिया में दबा के चौके में गाड़ रखे हैं। सोचकर कि आड़े वक्त काम आएँगे, मगर यों बच्चे की शोभा बिगाड़कर पैसों का क्या सुख!...शौक मर गया तो फिर वही निहाद—उपासे के आगे मोदक!

निकट आती टोली के बावजूद उसका अधीर हृदय हुड़क रहा है कि खूँटा-तुड़ाई गइया-

सी दौड़ वह अपने ललौना को अंक में कोरिया ले। उसे बता दे—वह शीघ्र ही उसके लिए लट्ठे का पायजामा और मारकीन की कमीज़ सिलवा देगी। पाँवों में चट्टी भी पहनवा देगी। धनुहीखेड़ा की हाट इसी बिफ्फै (बृहस्पति) की ही तो है...

"चचिया, पायँ लागी।"

"चचिया, चचिया, ललौना की कक्षा के बड़े पंडित जी दण्ड दिहिनन हयँ... पूरी कक्षा घामे म खड़ी हय...घण्टा भर से पहले न छोड़िहैं...कोऊ सरौना पानी पियके मटका तोड़ दिहिस रहय..."

ललौना के मुख से अपने लिए 'चचिया' सम्बोधन सुनकर वह जैसे गहरी नींद से चौंकी। यह तो ललौना नहीं, अपनी सुभागी दिदिया का बचई है! क्या वह दिवास्वप्न देख रही थी!

दण्ड की बात सुनकर क्षण-भर पहले का कुलाँचें भरता हुआ मन खिन्न हो आया। बासी पनेथी बुकुनू चुपड़ के खा के गया है। भूख के मारे आँतें कुलबुला रही होंगी। तिस पर आग-लगी छिली काँख की पीर। कब से सोच रही है कि दोनों बकुलियों के गुलेल के मुख पर उतरी हुई धोती की गुंडरी-सी बना के अटका देगी, ताकि काँखें काठ की कोंच और छीलन से तनिक बची रहें। मगर ठाकुर सुमेर सिंह के घर से प्राप्त उतरन की हर धोती उसकी अपनी ही आबरू को आड़ देने में होम हो जाती है। छिली काँखों को मरहम लगे तो कौन जतन लगे!

आँचल में बँधी कुंजी से घर का ताला खोल, भीतर दाखिल होते ही सुक्खन भौजी का हिया फिर से आशा-निराशा के गर्त में गोते लगाने लगा। उसे बुलाकर ठाकुर सुमेर सिंह ने जो आस की लौ की तीली दिखाई है, सचमुच पूरी होगी? हो सकता है, कोई चमत्कार घट ही जाए! आजकल माने हुए हकीम, वैद्य, सिद्ध, तान्त्रिक जो नहीं कर पाते, वह शहर के आला लगाये डॉक्टर कर दिखाते हैं। बातें सुनने में आती ही रहती हैं। पिछले साल की ही तो बात है —परधान पंडित भुवनेश्वर बाबू की जीप दौड़ानेवाला कालीचरना अपनी सुना रहा था कि यह जो हमारी बाईं टाँग भली-चंगी देख रही हो न, सुक्खन भौजी! असली नहीं है, बस ऊपर से मांस-मज्जा असली है। एक रोज़ ठेला से टकरा टूटकर झूल गई। हमने उम्मीद छोड़ दी कि अब परवश हो गये। रोज़ी-रोटी के काबिल नहीं रहे। लेकिन भौजी, मान गये लोकनायक अस्पताल वालों को। टाँग में हड्डी की जगह स्टील की सरिया इतनी सफाई से बैठाई है कि दूसरों पर बोझ होने की गलाज़त से बच गये।

कालीचरना गपोड़ी नहीं है। टाँग उघाड़कर उसने उसे एक लम्बी-सी चीर दिखाई थी और चीर देखते ही उसके मुँह से करुणा की सिसकारी फूट पड़ी थी...कालीचरना ठीक हो सकता है तो उसका ललौना ठीक नहीं हो सकता?

कौतूहल से भरे ललौना को मेज़ पर चित लेट जाने का आदेश देते हुए, गले में आला लटकाए डॉक्टर बाबू उसकी मैल-अटी देह पर झुक आए। वे कभी उसकी सूखी टाँगों को तनिक ऊँचा उठाकर देखते, तो कभी टाँग टखनों से मोड़ने की कोशिश करते, कभी सूखी

सेम की फलियों-सी ऐंठी उँगलियों, अँगूठों को चुटकी से खींचते, दबाते। बीच-बीच में वे ललौना के मुख पर प्रतिक्रिया भाँपने की कोशिश करते, उससे पूछते भी चल रहे थे कि उँगलियाँ खींचने, दबाने, टाँगों को मोड़ने, उठाने या उठाकर अचानक छोड़ देने से क्या उसे किसी प्रकार के छुअन का बोध हो रहा है?

"पैदाइश से ही इसकी टाँगें बेजान हैं?"

सारी कार्रवाई से विस्मित सुक्खन भौजी प्रश्न सुनते ही संकोच से गड़ गयी। वह पर्दाधारी मेहरिया, पराये मनई से उसकी बतकही कभी हुई नहीं। होती भी है तो सम्बन्धों में लुहरे लगने वालों के संग भर। यहाँ तख्त पर ठाकुर सुमेर सिंह समेत मंजकुरिया टोला के लम्बरदार पुतन सिंह, पंडित मातादीन तिवारी, रजऊ काका, जेठ और ससुर लगते सभी आसीन हैं। मुँह खोलने का दुस्साहस कहाँ से जुटाए!

गाहे-बगाहे गलियारे-दुआरे सामने पड़ भी गई होगी तो उनके निकलने तक मुँह मूँदे, पीठ किये हुए ही खड़ी रही होगी।

डॉक्टर ने फौरन सुक्खन भौजी का संकोच ताड़ लिया। मुलायम स्वर में साहस बँधाते हुए बोले, "संकोच करोगी तो किसी नतीजे पर पहुँच पाना मुश्किल होगा...इलाज में भी देर लगेगी...दूसरा कोई ठीक-ठाक बता भी नहीं पायेगा।..."

तभी रजऊ काका का ध्यान उसकी ओर गया। चल रही चर्चा से उचट वहीं से बैठे-बैठे उन्होंने ऊँचे स्वर में सुक्खन भौजी को डपटा, "काहे दिक्क कर रही हो डॉक्टर बाबू को...जो पूछ रहे हैं, बताती काहे नहीं?"

डॉक्टर साहब ने अपनी जिज्ञासा दोहराई, "लड़के की टाँगें पैदाइश से ही बेजान हैं?"

अबकी साहस कर सुक्खन भौजी ने इनकार में सिर हिला दिया।

आशय समझ डॉक्टर साहब ने दूसरा सवाल किया, "कैसे कह सकती हो कि पहले इसकी टाँगों में जान थी?"

"पैयाँ-पैयाँ अँगनई में डोलत रहय!" कहते हुए सुक्खन भौजी का कण्ठ भर आया। भावनाओं पर काबू नहीं रख पायी। बरसों पूर्व दिठौना-लगे ललौना की मोहनी बाल छवि आँखों में तैर गई...

"तो...कब महसूस हुआ कि बच्चे की टाँगें काम नहीं कर रहीं?"

अकुलाये हृदय को सहेजने की चेष्टा करती हुई वह अवरुद्ध कण्ठ से बताने लगी कि पैंया-पैंया चलते हुए एक रोज़ ललौना अचानक पेट के बल पड़ रहा और उसी मुद्रा में बड़ी देर तक पड़ा रहा। कड़वे तेल से लेकर वैद्य, हकीम न जाने किस-किस से तेल जुगाड़ उसकी टाँगों की बँधी मालिश की, मगर लुंज हुई टाँगों में पिरान नहीं लौटे तो नहीं लौटे।

"पोलियो का मामला है।" निकट आ खड़े हुए ठाकुर सुमेर सिंह से उन्मुख होते हुए विचारमग्न डॉक्टर साहब ने जाँच का निचोड़ स्पष्ट किया।

"मामला हाथ से निकल चुका है। समय पर इलाज के अभाव ने गुंजाइश नहीं छोड़ी,

टाँगें कट गई होतीं, टूट गई होतीं तो भी इलाज सम्भव था। नकली टाँगें लगवाई जा सकती थीं...एक ही उपाय शेष है—बैसाखियाँ या फिर पहियेवाली गाड़ी। मैं जगदम्बा बाबू से सिफारिश करूँगा।"

"सुबह जिला कार्यालय में मेरी मुलाकात भी जगदम्बा बाबू से होगी, परसों पार्टी के महासचिव दिल्ली से आ रहे हैं। पार्टी संगठन को लेकर विशद चर्चा होगी। बात करूँगा... कितने गाँव निबट गए हैं?"

"आपके निकट धनुहीखेड़ा से लेकर बारा तक अधिक मामले नहीं हैं विकलांगों के। बच्चों की संख्या ज़्यादा है। देहात की यह विडम्बना है। अधिकांश बच्चे पोलियो-ग्रस्त होकर अपंगता भोगने को बाध्य हैं।"

प्रतिक्रिया में ठाकुर सुमेर सिंह गम्भीर हो आये—"ठीक कह रहे हैं। अशिक्षा ने इन्हें अन्धविश्वासों में जकड़ रखा है। सहायता उपलब्ध होते हुए भी ये टीका लगवाने में विश्वास नहीं करते...चाय-नाश्ते के बाद यहाँ से सीधे भरतीपुर निकल लें?"

"चाय-नाश्ता वासुदेव बाबू के यहाँ सही। अच्छा हो, शाम तक इस ब्लॉक के शेष तीनों गाँव निपट जाएँ।"

ठाकुर सुमेर सिंह के बैठक से निकलते ही डॉक्टर बकुलियों के सहारे झूलती-सी ललौना की कृशकाय देह पर करुण दृष्टि डालते हुए सुक्खन भौजी की ओर मुड़े—"चिन्ता छोड़ दीजिये। शीघ्र ही आपका बेटा अपने हमजोलियों की तरह घूमता-फिरता नज़र आएगा...अब टाँगें नहीं लौट सकतीं, पर अब निराश होने की ज़रूरत नहीं। मैं जगदम्बा बाबू से सिफारिश करूँगा, इसे हाथ से चलने वाली पहियोंवाली गाड़ी दी जाए।"

आगे बढ़कर उन्होंने सहमे खड़े ललौना के कन्धे हौसला बढ़ानेवाले अन्दाज़ में थपथपाये—"ये दोनों हाथ दोनों टाँगों का भी काम करेंगे। बस, अपनी सेहत का ध्यान रखो, बरखुरदार!"

डॉक्टर बाबू का आश्वासन पाकर सुक्खन भौजी का हृदय उम्मीद से विह्वल हो आया। अनदेखे जगदम्बा बाबू की छवि एकाएक उसके निष्कलुष सरल हिया में किसी देवता की मूरत-सी साकार हो आँखों के आगे झिलमिलाने लगी। आँखें भादों हो आईं और कृतकृत्य-सी ढुलकते हुए अश्रुओं से देवता की मूरत का अभिषेक करने लगीं। सेहत का उलाहना डाकदर बाबू ने झूठ नहीं दिया। बकरियाँ पाली किसकी खातिर हैं? पर कभी-कभी नीयत डोल जाती है। चार पैसों का मोह गठिया, बेचने को खोवा अऊट लेती है। आँखिन किरिया जो अब वह दूध औटने कढ़इया में भूले से भी चढ़ाये।

घर के रास्ते बढ़ी तो पाया कि सलोने भाई की नौटंकी के आगमन की रोमांचित खुशी की तरह उसके ललौना की टाँगों के इलाज की खबर आनन-फानन गाँव डोल आई हैं और सभी को उद्वेलित किये हुए है। लोगों की इस टिप्पणी पर कि, "चौदह वर्ष में तो घूरे के दिन भी फिरते हैं। चलो, दुखियारी महतारी की भी भोले बाबा ने सुध ली," वह आँखें पोंछने लगती और प्रत्युत्तर में ठाकुर सुमेर सिंह की महानता के बखान के संग जगदम्बा बाबू का

जस गाते, कृतज्ञता से दोहरी होने लगती। लोगों ने उसकी हाँ में हाँ मिलायी। कलयुग में गाँधी बाबा ने दुखियारों की सुध ली थी, सुराज दिलाया। उनके बाद विनोबा बाबा लँगोटी धरे गाँव-गाँव बेसहारों के लिए दौड़ते रहे। जगदम्बा बाबू वैसे ही महात्मा अवतारी पुरुष लगते हैं, वरना कौन गरीब-गुरबा के कष्टों पर पुलटिस बाँधता है?

"सब ठाकुर सुमेर सिंह की महिमा का परताप है। एक परधान पण्डित भुवनेश्वर बाबू हैं जो परधानी घोंट-घोंट छानि रहय हैं मस्ती। गरीब-गुरुबा का ध्यान तबै तक रहय जबै तलक परधानी के वोटन की दरकार रहय! अब तो भैया गाँव में जौन कुछ हुइ रहा है ठाकुर सुमेर सिंह की बदौलत।"

प्रदेश कांग्रेस की महिला कार्यकर्ता कुर्सी पर बैठने के लिए हिचकिचाती सुक्खन भौजी को बड़े अनुनय के बाद राज़ी कर पाई। कुर्सी वह भी एकदम अगली पाँत में। गेंदे की लड़ियों से आच्छादित मचान से बने मंच से यही कोई पन्द्रह-बीस हाथ पर। गनीमत थी कि पोलका पर बिल्ला टाँके अगल-बगल अन्य स्त्रीयाँ सिर उघाड़े बैठी हुई थीं। नखलऊ (लखनऊ) से आयी थीं। उन्हें देख सुक्खन भौजी बैठने का साहस सँजो पाई। वरना उसे याद नहीं पड़ता—खटोला, मचिया या टाट छोड़ वह कभी किसी ऊँचे आसन पर बैठी हो। वह भी अपनी बिरादरी में। बाभन-ठकुरन के घर तो कच्ची-पक्की भूमि की उदारता ही सिंहासन समझो।

अव्यक्त आनन्द से हुलसित उसकी दृष्टि घूँघट की ओट फलाँगती, मंच के दाहिनी ओर विशेष रूप से लगाई गई कुर्सियों पर बैठे हुए अपंगों की ओर उठ गई।

जगदम्बा बाबू स्मरण हो आए। सभी कह रहे हैं, जगदम्बा बाबू जनता के सेवक हैं। दीन-दुखियारों के रक्षक। प्रजा के कष्टों को पहचानने वाले गुप्ताजी के मन्त्रिमण्डल में वे राज्य के स्वास्थ्य मन्त्री थे। पिछले चुनाव में ग्रहों ने कुछ ऐसी खुराफात दिखाई कि अपने बरसों पुराने इसी गढ़ से जनता पार्टी के गयादीन जैसे लम्पट उम्मीदवार से मात्र सात सौ वोटों से पटखनी खा गए। उनके जैसा पुन्न-परतापी ऐसे चिरकुट से मात खाने वाला थोड़े ही था? सुना, वो तो लाठी-बल्लम के बूते वोटों के बक्से बदल दिए गये! सोने पे सुहागा यों हुआ कि कलेक्टर से लेकर एस.पी.—दोनों ससुरे उसकी बिरादरी के निकले, वरना कोई चरित्र है गयादीन का? शिवलाल की बिटिया सुखनी के साथ भुसौर में केलि-क्रीड़ा करते हुए रंगे हाथों धर लिये गये थे। कटिया काटने का गँड़ासा ताने सुखनी के लाल भभूका भाई ने बड़ी नहर तक तरिया लिया था उन्हें। बाद में भरतीपुर के ठाकुर शिवबली सिंह के घर फर्जी सेंध के मामले में फँसाकर उन्होंने उसे जेल भिजवाकर ही दम लिया। ऐसा अधर्मी जगदम्बा बाबू के मुकाबले विजयी हुआ तो जबरई के ही चलते न।

कह रहे हैं, तिया-पाँचा से विधानसभा में गयादीन पहुँच तो गए, मगर तीन बरस में तीन से अधिक मुँह दिखाई नहीं की अपने इलाके की। इष्ट, सगे-सम्बन्धियों को ठेका दिलवाने, भट्ठा खुलवाने, परमिट जारी करवाने और कुछेक सड़कों पर मामूली बजरी बिछवाने तक ही उनकी जनसेवा का प्रण रेवड़ियाँ बाँटता रहा।

धनुहीखेड़ा में बड़ा अस्पताल खुलवाने का दम भरा था कि औरतों की जचगी के लिए विशेष रूप से इस अस्पताल में तीसेक खटिया डलवाएँगे, ताकि जच्चा-बच्चा की हिफाज़त की सुविधा हो, सो आज तक नींव भी नहीं खुदी। उनकी पार्टी की सरकार नहीं है तो क्या उनकी बात का वजन फूँक हो गया? कह रहे हैं, असहाय सुदामाओं की सुध लेने जो जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं, कोई सरकार के खर्चे पर थोड़े ही सदाव्रत खोलने निकले हैं? वो तो अपनी टेंट से लूले, लँगड़ों को सिलाई की मशीनें, बैसाखियाँ और पहियेवाली गाड़ियाँ बाँटेंगे। गरीबों की सेवा का व्रत है उनका।

कैसा भव्य मेला जुड़ा है! ठीक महावीरन के मेले जैसा कोस-भर लम्बा दंगल का मैदान फुलवारी-सा झण्डियों और झण्डों से सजा है। भोंपू से गाँधी बाबा की रामधुन —'रघुपति राघव राजा राम' गूँज रही है। सुरगवासी होने से पहले दिया गया इन्दिरा मैया का भाषण भी बीच-बीच में बज रहा है। कोसों दूर-दूर से जनता पैदल, लढ़िया, जीप, ठेला में उमड़ी चली आ रही है। कह रहे हैं न जाने कहाँ-कहाँ से छापाखाना वाले खबर लेने और फोटू खींचने आ रहे हैं, सबकी फोटू और खबर छापा में छपेगी।

सुक्खन भौजी का मन ललक रहा है कि पोलके पर फीते का बिल्ला टाँके, इन्तज़ाम में व्यस्त किसी बहन जी से विनती करे कि उसे निकट से पहियों वाली गाड़ी दिखा दे। तनिक छूकर देखे, ललौना उस पर किस विधि बैठेगा, चलेगा-फिरेगा कि उसकी छरछराती काँखों पर अब उसे हल्दी तपाकर नहीं लेपनी पड़ेगी। उसकी घायल काँखें इतनी हल्दी सोख लेती हैं कि अक्सर दाल में चुटकी-भर छिड़कने की गुंजाइश भी नहीं बचती।

दृष्टि घूम-फिरकर मंच की बगल में बैठे अपने ललौना पर जा टिक गयी। मारकीन की नई कमीज़ और खाकी नेकर पहने, सूखी टाँगों पर बकुलियाँ टिकाये ललौना एकदम किसी किस्सेवाला राजकुमार प्रतीत हो रहा है। बकरिहाइन काकी से मुट्ठी-भर सरसों माँगकर लायी थी। खूब महीन उबटन पीसा था। देह रगड़-रगड़कर मैल की बत्तियाँ झाड़ी थीं। नहलाकर नई नेकर-कमीज़ पहनाई तो बेटे की आँख बाँधती छवि पर न्योछावर होता चित्ता सहसा उसके बप्पा का स्मरण कर भावुक हो आया। ललौना को अपने पाँवों पर चलता देखने की हौंस कलेजे में दबाए हुए ही वह अचानक नाता तोड़कर चल दिए थे एक रोज़!

सिर पर चढ़ता घाम धीरे-धीरे चटक होने लगा है। कह रहे हैं कि ग्यारह बजे तक जगदम्बा बाबू दंगलवाले मैदान पहुँच जाएँगे। कार्यक्रम खत्म होने के बाद वे गाँव के परधान पण्डित भुवनेश्वर बाबू के घर जाएँगे—अकेले में लोगों के कष्ट सुनने। कष्टों को वे सीधे सरकार तक पहुँचाएँगे, एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा देंगे कि जल्दी उन पर कार्यवाही हो, तत्पश्चात् मदरसे में दल-बल सहित उनका भोजन होगा।

पक्के ताल वाली सड़क पर अचानक धूल के बादल फन फैलाने लगे। कार्यकर्ता सतर्क हो उठे। मंच पर चढ़कर उत्साहित स्वर में ठाकुर सुमेर सिंह ने घोषणा की कि अब धैर्य की परीक्षा खत्म हुई। कुछ ही पलों में सुप्रसिद्ध समाज-सेवक 'विकलांग उद्धार समिति' के जन्मदाता बाबू जगदम्बा प्रसाद सभा-स्थल पर पधारनेवाले हैं। कृपया अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए ही शान्तिपूर्ण उत्साह के साथ उनका स्वागत करें।

सभा-स्थल के इर्द-गिर्द कुछ लठैत किस्म के पहरेदारों की भी व्यवस्था थी ताकि विरोधी पार्टी के लोग, विशेष रूप से परधान पण्डित भुवनेश्वर बाबू के चमचे कार्रवाई में अव्यवस्था न पैदा कर सकें।

जगदम्बा बाबू की जीप रुकते ही विशाल जनसमूह ने करतल ध्वनि से उनकी अगवानी की। ठाकुर सुमेर सिंह लपककर उन्हें मंच पर ले जाने लगे। उनके साथ ब्लाक के बी.डी.ओ. से लेकर तमाम सरकारी, अर्द्धसरकारी अधिकारियों का काफिला आया हुआ था। मन्त्री पद पर न रहने के बावजूद जगदम्बा बाबू का दबदबा सत्तारूढ़ पार्टी के संगठनकर्ता के रूप में कम नहीं था। ऊपर तक उनकी पहुँच सर्वविदित थी।

उत्सव-सी यह सरगर्मी सुक्खन भौजी को रोमांचित कर गई। एक तो पहली बार ऊँच-नीच का भेदभाव छोड़, राव-उमरावों के बीच बैठने का सम्मान प्राप्त हुआ था वह भी अपने अपाहिज बालक के चलते, जो बड़े-से-बड़े कमाऊ सपूतों वाली महतारी के भाग में भी दुर्लभ होता है। दूसरे उसका आश्रित पूत आज से अपने पाँव पर खड़ा हो सकेगा! यह सुखानुभूति उसके रोम-रोम में किलकती फिर रही है। आँखें कभी मंच पर अनेक मालाएँ धारण किये हुए जगदम्बा बाबू के ओजस्वी मुखमण्डल पर लोट जातीं तो कभी अचम्भित ललौना के मुख पर।

"भाइयो! अब जगदम्बा बाबू शारीरिक अक्षमतानुसार विकलांगों को स्वावलम्बित बनाने हेतु उपहार भेंट करेंगे।" ठाकुर सुमेर सिंह की उद्घोषणा का उपस्थित जनसमूह ने करतल-ध्वनि से स्वागत किया।

मंच से उतरकर जगदम्बा बाबू उस स्थान की ओर बढ़े जहाँ वितरित होने वाले उपहार सजाये हुए थे। विकलांगों के मलिन चेहरों पर सघनाती सन्ध्या बेला गंगा में सिराये जाने वाले सैकड़ों दीपमालाओं की हिचकोले खाती उजास हिलोरें लेने लगी। एक के बाद एक नाम पुकारे जाने लगे।

सगवर का संकठा प्रसाद दाएँ हाथ से लूला! जगदम्बा बाबू ने उसे पैरों वाली सिलाई की मशीन भेंट की। संकठा प्रसाद जुम्मन मियाँ की सिलाई की दुकान में मजूरी करता है, अब अपना अलग काम शुरू कर सकेगा। इतना नाता जुम्मन मियाँ निबाहेंगे ही कि उसके लिए पोशाकें काट दिया करेंगे। सिलाई मशीन के एक ओर जगदम्बा बाबू खड़े हुए हैं तो दूसरी ओर संकठा। सुक्खन भौजी का हृदय अधीर हो आया कि बारी-बारी से सभी के नाम पुकारे जा रहे हैं, उनके ललौना को अब तक क्यों नहीं बुलाया गया? कहीं ऐसा तो नहीं कि सब कुछ बँट जाये और उनके ललौना के हाथ कुछ भी न लगे! नामों की घोषणा बदस्तूर जारी है। वह सुन रही है। अब फिर किसी का नाम बार-बार दोहराया जा रहा है—"मोरी दय्या, ई तो मोरे ललौना का नाम हय!" अकस्मात् बोध हुआ तो षोडषियों की तरह लज्जित हो अपने ओंठ काट लिये। प्रतिपल 'ललौना-ललौना' सम्बोधन की आदी उसकी बेसुध मनश्चेतना को भान ही नहीं हुआ कि बिसनू कुमार बारी अन्य कोई नहीं, उसका छौना ललौना ही तो है।

इत्ता बल कहाँ से आ गया मुँहझौंसे में। बकुलियों का टेका लिये धमर-धमर चलता हुआ ललौना जगदम्बा बाबू की ओर बढ़ रहा है, जहाँ वे एक साइकिलनुमा हैंडिल वाली गाड़ी के निकट खड़े हुए हैं। फुर्ती से बिल्लेवाला कार्यकर्ता आगे बढ़ ललौना को जगदम्बा बाबू से मिलाता है। ललौना ने दोनों हाथ जोड़कर जगदम्बा बाबू को नमस्ते की। 'च्-च्' नासिका टेक पैलगी करैक चाही कि बाबुन की भाँति हाथ जोड़ि रहा हय? सुक्खन भौजी का दिमाग भन्ना उठा। किन्तु अगले ही पल अपनी भूल का एहसास हुआ। बकुलियों के सहारे टिके खड़े ललौना के लिए एकाएक झुकना कष्टकर ही नहीं, मुश्किल भी है।

प्रसन्न जगदम्बा बाबू हाथ में कैंची लिये पता नहीं ललौना को धीमे-धीमे गाड़ी दिखाते हुए क्या समझा-बतिया रहे हैं? तभी ठाकुर सुमेर सिंह आगे बढ़ उन्हें पहियेवाली गाड़ी पर बँधे गुलाबी फीते की ओर संकेत कर काटने का आग्रह करते हुए दिखे। फीता कटते ही तालियों की तुमुल गड़गड़ाहट पलों वातावरण में उत्तेजना फैलाये रही। एक कार्यकर्ता ललौना को स्वयमेव गाड़ी में बैठने और उसे हैंडिल द्वारा संचालित करने की विधि समझाने लगा है। ललौना की अचम्भित आँखों में आत्मविश्वास-भरी चमक अँकुआ आई है। उसने अपने गाँव में अनगिनत साइकिलें दौड़ती देखी हैं, पैडल मारते पाँवों को बड़ी हसरत से देखता रहा है वह। उसे महसूस होता है, उसके हाथ सहसा पाँवों में परिवर्तित हो उठे हैं। गाड़ी का हैंडिल पैडल में और पैडल में उसके पाँव तेज़ी से घूमने लगते हैं।

ललौना की गाड़ी ऊबड़-खाबड़ मैदान में झकझोले खाती तीव्रता से आगे बढ़ी जा रही है। प्रतिक्रिया में रोमांचित जन-समुदाय निरन्तर हर्ष-ध्वनि से आकाश गुँजाए दे रहा है।

लम्बा गोल चक्कर मारकर उसी स्थान पर लौटते ही जगदम्बा बाबू ललौना की पीठ थपथपाकर उसे हार्दिक बधाई देने लगे। छायाकारों की भीड़ ने दोनों को चारों ओर से घेर लिया। सीधे-सरल ग्रामवासियों के लिए यह अद्भुत दृश्य है। एक उदार महिला कार्यकर्ता को अचानक सुक्खन भौजी का स्मरण हो आया। वे जबरन उसे उठाकर, भीड़ को चीरती हुई ले जाकर, ललौना के निकट खड़ा कर जगदम्बा बाबू और छायाकारों से उसका परिचय करवाती हैं कि यही बिसून बारी की माँ है। छायाकार ललौना और गाड़ी के संग सुक्खन भौजी की तस्वीर खींचना चाहते हैं। आग्रह करते हैं कि वह ज़रा-सा मुँह खोल लें। लेकिन उनके लगातार आग्रह के बावजूद सुक्खन भौजी का आँचल उँगली-भर पीछे नहीं सरका। अच्छा ही किया, वरना अपनी मूसलाधार बरसती आँखों को लोगों की नज़र से कैसे छिपाती? लोग धिक्कारने लगते, कैसी अपशकुनी मेहरिया है! शुभ कारज पर टिसुए ढुलकाये जा रही है...

बचा-खुचा खाना बिलरिया के भय से सिकहरे में टाँगते हुए सुक्खन भौजी को चिन्ता हो आई कि ललौना को पहले दूध दे दे। कुम्भकरना खटिया पर पड़ते ही नाक बजाने लगता है। बासन बाद में निपटा लेगी। महतारी-बेटवा, दुइ प्राणी के होते ही कितने हैं? परन्तु कल के लिए टालना ठीक नहीं होगा। कल एकादशी है। घर लीपने के लिए गली-गलियारों से गोबर

इकट्ठा किया रखा है। मुँह-अँधेरे उठकर लीपना शुरू करेगी, तब कहीं जाकर सूरज उगे तक निपटा पाएगी। टहल के लिए निकलने में अबेर हो गई तो दुलहिनें लत्ता लेने से चूकेंगी?

अँगनई के दाहिने कोने में जहाँ पुदीना बोया हुआ है और माटी की ऊँची बेडौल भीती पर तुरई की बेल चढ़ा रखी है, वहीं ललौना की गाड़ी खड़ी हुई है। गाड़ी सुक्खन भौजी दुआर पर नहीं छोड़ती। भीतर लाने के उपक्रम में देहरी तुड़वाकर समतल करवानी पड़ी, ताकि गाड़ी भीतर आ सके। उसने करवाई। ललौना कम दुष्ट है! फर्राटे से गाड़ी अँगनई में ले आता है और चक्करघन्नी देते हुए उसे खूब दिक्क करता है। बिरझाई सुक्खन भौजी उसे गरियाती जाती है 'कूकर नाहिकै... पुदीने की क्यारी रौंदि डारेव? अबकी जौ तुम मोटाई छँटिहौ नासिकटौनू, तौ खाल उधेड़ के धरि देब!'

वह अम्मा की बिरझाहट का मज़ा लेते हुए तभी थमता है जब उसे अनुमान हो जाता है कि अब वे गाली से नहीं, चैले से काम लेंगी।

दुधहड़ी से गिलास में दूध डाल और उस पर मोटी साड़ी का टुकड़ा रखकर, गुनगुना आए गिलास को आँचल से दबाए हुए सुक्खन भौजी ललौना के खटोले की ओर बढ़ ही रही थी कि साँकल खड़कने की ध्वनि सुन, चौकन्नी हो थम गई। ध्वनि-भ्रम तो नहीं हुआ उसे? नहीं, ध्वनि-भ्रम नहीं, सचमुच साँकल खड़की है। दुआरे पर कोई है! गिलास खटोले के पाये के पास रखकर, वह आले से ढिबरी उठा किवाड़ों की ओर बढ़ी। शर्तिया बकरिहाइन काकी होंगी। बहुरिया पूरे दिनों से है। हो सकता है, सौरि में जाने की नौबत आ गयी हो और वे उसे सहायता के लिए बुलाने आयी हों?

"ककिया, तुम हो का?" सुक्खन भौजी ने निधड़क होकर भीतर से दरियात की।

"हम हैं ठाकुर सुमेर सिंह!" प्रत्युत्तर में गर्जन-भरी आवाज़ कानों से टकराई। सुक्खन भौजी को पहचानते देर नहीं लगी। प्राण सूख गए। मालिक और इतनी अँधरिया में? कहीं कुछ अघटित तो नहीं घटित हो गया। कहीं...दिद्दा? लेकिन फिर भी, उसे बुलाने के लिए भला उनको आने की क्या आवश्यकता थी? दुक्खी, भरोसे, दुलारे किसी को भी सरपट दौड़ा दिया होता। हाथ की ढिबरी ऊँची उठा, पंजों के बल उचककर वह साँकल खोल, दरवाज़े की आड़ में घूँघट काढ़ खड़ी हो गई। समझ में नहीं आया, देहरी पर पहली बेर आये ठाकुर सुमेर सिंह का स्वागत-सत्कार किस विधि करे। बैठाये तो कहाँ? जिज्ञासा करे तो कैसे? तभी मालिक ने उसे संकट से उबार लिया।

"ज़रूरी बात करनी है।"

सुक्खन भौजी की देह का रक्त-प्रवाह तीव्र हो उठा।

"दरअसल कल बीघापुर में 'विकलांग उद्धार समिति' का दूसरा समारोह है। जगदम्बा बाबू को पहले ही की तरह अपाहिजों को उपहार वितरित करने हैं। केन्द्र से सम्भवतः ऊर्जा मन्त्री कार्यक्रम को सुशोभित करने आ रहे हैं। लेकिन प्रदान की जाने वाली गाड़ियाँ अब तक नहीं आ पाई हैं। कार्यक्रम घोषित हो चुका है। दूरदर्शन और अखबारवालों से लेकर तमाम प्रतिष्ठित लोगों को आमन्त्रित किया जा चुका है। आस-पास के इलाकों से हज़ारों की तादाद

में जनता पहुँच रही है। चुनाव निकट हैं। कार्यक्रम स्थगित करना असम्भव है... जो गाड़ी ललौना को भेंट की गयी है, वापस चाहिए।" कहकर उन्होंने ढिबरी की काँपती लौ से धुँधलाए अँधेरे में टटोलती दृष्टि इधर-उधर दौड़ाई। आँगन के एक कोने में खड़ी गाड़ी को देख वह अपेक्षाकृत मुलायम स्वर में बोले, "एकाध रोज़ में ललौना के लिए मज़बूत बैसाखियाँ बनवा देंगे। वह आराम से चल-फिर सके, यही हमारा उद्देश्य है।"

सुक्खन भौजी के सिर पर मानो बिजली गिर पड़ी। वह उँगलियों में कसी ढिबरी फेंक कटे वृक्ष-सी मालिक के चरणों में ढह जाना चाह रही है, 'मालिक! मोरे बचौना की जिनगी न छीनो, पहियावाली गाड़ी पाय के वह हिरन की नाईं चौकड़ी भरत फिरत हय...राँड़ मेहरिया की बुढ़ौती की आस है अभागा...गाड़ी छीन लैहो तौ कैसे जिई मोर ललौना! कइसे जिई...'

लेकिन प्रतिवाद में भीतर फूटता आर्तनाद ठाकुर सुमेर सिंह की उपस्थिति के आतंक में मूरत बन गया।

ठाकुर सुमेर सिंह उसे मूरत बनी छोड़ देहरी के निकट आए। संकेत की प्रतीक्षा में बाहर खड़े तीन व्यक्तियों को उन्होंने अस्फुट स्वर में भीतर बुलाया और सुक्खन भौजी की परवाह किये बगैर गाड़ी दिखाकर आदेशात्मक स्वर में बोले, "गाड़ी सावधानीपूर्वक उठाकर वैन में रख दो...वैन इधर गलियारे से नहीं... ऊसरवाली सड़क पर से निकाल ले जाओ।"

पेट से गले और गले से पेट के भीतर पछाड़ खाते रुदन को मुँह तक न आने देने के प्रयास में थर्राती सुक्खन भौजी की ओर मुड़कर ठाकुर सुमेरसिंह मात्र इतना भर बोलकर देहरी की ओर बढ़ दिये, "पूछा-पाछी होने पर कह देना...गाड़ी चोरी चली गयी।"

काँपती टाँगों से सुक्खन भौजी ने किवाड़ों की साँकल चढ़ाई और पलटकर कुठरिया के भीतर दाखिल हो हाथ में कसी ढिबरी उस दीवाल की ओर उठा दी जिस पर पंचायत घर से प्राप्त अखबार की वह कतरन चिपकाई हुई थी, जिसमें गाड़ी पर बैठे हुए ललौना और बगल में हर्षित मुद्रा में ताली बजाते हुए जगदम्बा बाबू की तस्वीर छपी हुई थी...।